मंगलेश डबराल के काव्य में सामाजिक - सांस्कृतिक सरोकार

HIN-675 शोध प्रबंध

श्रेयांक: 16

स्नातकोत्तर कला (हिंदी)

की उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध

शोधार्थी

कु. बेबीनंदा शेटकर

अनुक्रमांक: 22P0140005

PR Number: 201902832

मार्गदर्शक

डॉ. बिपिन तिवारी

शणै गोंयबाब भाषा और साहित्य संकाय

हिंदी अध्ययन शाखा

गोवा विश्वविद्यालय

अप्रैल 2024

GOA UNIVERSITY
SHENOI GOEMBAB SCHOOL OF LANGUAGES & LITERATURE
TALEIGAON PLATEAU

परीक्षक : डॉ. बिपिन तिवारी

Seal of the School

DECLARATION BY STUDENT

I hereby declare that the data presented in this Dissertation report entitled, **मंगलेश डबराल के काव्य में सामाजिक - सांस्कृतिक सरोकार** is based on the results of investigations carried out by me in the Discipline of Hindi at **Shenoi Goembab School of Languages and Literature, Goa University** under the Supervision of **Dr. Bipin Tiwari** and the same has not been submitted elsewhere for the award of a degree or diploma by me. Further, I understand that Goa University or its authorities will be not be responsible for the correctness of observations/experimental or other findings given the dissertation. I hereby authorize the University authorities to upload this dissertation on the dissertation repository or anywhere else as the UGC regulations demand and make it available to any one as needed.

Miss. Babynanda B. Shetkar

22P0140005

Date: 16-04-2024

Place: Goa University

COMPLETION CERTIFICATE

This is to certify that the dissertation report **मंगलेश डबराल के काव्य में सामाजिक - सांस्कृतिक सरोकार** is a bonafide work carried out by **Ms. Babynanda Babani Shetkar** under my supervision in partial fulfilment of the requirements for the award of the degree of Master of Arts in the Discipline of Hindi at the Shenoi Goembab School of Languages and Literature, Goa University.

Dr. Bipin Tiwari

Date: 16-04-2024

Prof. (Dr.) Anuradha Wagle

Dean, SGSLL

GOA UNIVERSITY SHENOI GOEMBAB SCHOOL OF LANGUAGES & LITERATURE TALEIGAON PLATEAU

School Stamp

Date: 09-05-2024

Place: Goa University

गोंय विद्यापीठ
ताळगांव पठार,
गोंय – ४०३ २०६
फोन : +९१-८६६९६०९०४८

(Accredited by NAAC)

ATMANIRBHAR BHARAT
SWAYAMPURNA GOA

Goa University
Taleigao Plateau, Goa-403 206
Tel : +91-8669609048
Email : registrar@unigoa.ac.in
Website : www.unigoa.ac.in

Ref. No.: GU/LIB/ATTENDANCE CERT./2024/ 268

Date: 9/05/2024

TO WHOM SO EVER IT MAY CONCERN

This is to certify that Miss Babynanda Babani Shetkar, a student of Goa University, M.A. (Hindi), visited the Goa University Library for her reference work on the following dates and completed 24 Hours & 54 Minutes of research internship as a part of her M.A. dissertation.

The detailed dates and times she visited are attached herewith.

This certificate has been issued at the written request of Professor Dr. Bipin Tiwari.

9/5/24

University Librarian
(Dr. Sandesh B. Dessai)

Dr. Sandesh B. Dessai
UNIVERSITY LIBRARIAN
Goa University
Taleigao - Goa.

GOA UNIVERSITY
LIBRARY
GOA

VISIT TO THE GOA UNIVERSITY LIBRARY

r. No.	Date	Time	Hours / Minutes
8	16-06-2023	09:45 - 10:45	1 hour
17	19-06-2023	10:50 - 12:00	1 hour 10 minutes
90	20-06-2023	01:23 - 02:18	55 minutes
1	22-06-2023	09:20 - 09:44	24 minutes
53	23-06-2023	11:39 - 12:22	43 minutes
82	27-06-2023	12:40 - 12:55	15 minutes
11	13-07-2023	09:30 - 09:34	4 minutes
188	17-07-2023	04:10 - 05:15	1 hour 5 minutes
196	17-07-2023	04:45 - 05:15	30 minutes
17	18-07-2023	09:30 - 09:55	25 minutes
144	19-07-2023	02:32 - 03:56	1 hour 24 minutes
261	28-07-2023	04:00 - 05:03	1 hour 3 minutes
68	16-08-2023	11:30 - 12:45	1 hour 15 minutes
214	06-09-2023	03:08 - 03:10	2 minutes
10	08-09-2023	09:20 - 09:50	30 minutes
06	27-09-2023	09:28 - 10:20	52 minutes
13	27-09-2023	04:33 - 4:40	7 minutes
190	27-09-2023	03:28 - 04:26	58 minutes
29	30-09-2023	10:25 - 10:35	10 minutes
207	04-10-2023	04:15 - 04:45	30 minutes
152	07-10-2023	03:45 - 03:50	5 minutes
11	21-10-2023	10:03 - 10:19	16 minutes
43	21-10-2023	11:21 - 12:25	1 hour 4 minutes
31	03-11-2023	11:55 - 12:52	57 minutes
09	06-11-2023	10:04 - 10:20	16 minutes
76	06-11-2023	02:55 - 04:20	1 hour 25 minutes
75	13-11-2023	12:10 - 12:12	2 minutes
153	09-01-2024	02:18 - 03:11	53 minutes
149	16-01-2024	02:55 - 03:05	10 minutes
98	19-01-2024	01:03 - 02:33	1 hour 30 minutes
20	23-01-2024	09:40 - 09:50	10 minutes
109	23-01-2024	12:15 - 12:25	10 minutes
178	29-01-2024	04:45 - 04:46	1 minute

09	12-02-2024	09:20 - 09:22	2 minutes
51	20-02-2024	10:55 - 10:56	1 minute
104	27-02-2024	01:40 - 02:45	1 hour 5 minutes
154	13-03-2024	04:50 - 04:57	7 minutes
81	15-03-2024	11:35 - 12:36	1 hour 1 minute
188	04-04-2024	03:30 - 03:45	15 minutes
244	10-04-2024	04:08 - 05:35	1 hour 27 minutes
140	16-04-2024	05:10 - 05:45	35 minutes
Total Hours			**24 hours 54 minutes**

Signature of the Guide
Dr. Bipin Tiwari

Signature of the University Librarian
Dr. Sandesh B. Dessai

Signature of the Student
Miss Babynanda Babani Shetkar

अनुक्रम

अध्याय	विवरण	पृष्ठ संख्या
	Acknowledgements	i
	अनुक्रम	iv
	प्रस्तावना	v
1	प्रथम अध्याय: आज़ादी के बाद के परिदृश्य में हिंदी कविता 1.1 समकालीन कविता: पृष्ठभूमि 1.2 इक्कीसवीं सदी में हिंदी कविता	1 – 20
2	द्वितीय अध्याय: मंगलेश डबराल की काव्य यात्रा पर विभिन्न आंदोलनों का प्रभाव 2.1 मार्क्सवादी प्रभाव 2.2 नक्सलवादी प्रभाव 2.3 आपातकाल विरोधी आंदोलन का प्रभाव 2.4 सांप्रदायिक समाज और धार्मिक आंदोलनों का प्रभाव 2.5 स्त्रीवाद का प्रभाव 2.6 मानवतावाद का प्रभाव	21 – 54
3	तृतीय अध्याय: मंगलेश डबराल की कविताओं में अभिव्यक्त सामाजिक-सांस्कृतिक प्रश्न 3.1 समकालीन कविता में समाज: एक सामान्य परिचय	55 – 107

	3.1.1 बाल चिंतन 3.1.2 परिवार संबंधित चिंतन 3.1.3 स्त्री की स्थिति 3.1.4 व्यक्ति केन्द्रित चिंतन 3.1.5 समाज से जुड़े अन्य प्रश्न 3.2 समकालीन कविता में संस्कृति: एक सामान्य परिचय 3.2.1 भूमंडलीकरण तथा बाज़ारवाद 3.2.2 ग्राम्य एवं नगरीय संस्कृति 3.2.3 भाषा चिंतन 3.2.4 मानवीय मूल्यों का ह्रास 3.2.5 संस्कृति हीनता	
4	चतुर्थ अध्याय: समकालीन कविता में मंगलेश डबराल का महत्त्व 4.1 आलोचकों, कवियों तथा मित्रों के मत	108 – 128
5	पंचम अध्याय: मंगलेश डबराल की काव्य भाषा 5.1 काव्य भाषा - एक परिचय 5.2 मंगलेश डबराल की काव्य भाषा का स्वरूप 5.2.1 शब्द संपदा 5.2.2 बिंब 5.2.3 प्रतीक- विधान 5.2.4 संगीतात्मकता 5.2.5 शैली- विधान	129 – 158
6	षष्ठ अध्याय: उपसंहार	159 – 161
7	परिशिष्ट – क: साक्षात्कार - आलोचक रविभूषण	162 – 170

8	परिशिष्ट – ख: सहायक ग्रंथ सूची	171 – 177

प्रस्तावना

हिंदी के प्रमुख कवि गोस्वामी तुलसीदास, कबीर, जयशंकर प्रसाद, नागार्जुन, महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह 'दिनकर', निराला, आदि कवियों को पढ़ना जितना ज़रूरी है, उतना ही ज़रूरी है हमारे समकालीन कवियों को पढ़ना क्योंकि कोई भी कवि अपने समाज से कटकर नही लिखता। अपने समय की ज़रूरतों को पहचानने के लिए और समस्याओं का समाधान ढूंढने के लिए एक कवि की बारीक दृष्टि ही हमें सही राह दिखा सकती है।

सत्तर के दशक में नक्सलबाड़ी के प्रभाव से ऐसी चेतना का जन्म हुआ जिसमें किसानों-मजदूरों के सशस्त्र संघर्ष की छाया महसूस की जा सकती है। हिंदी में नक्सलबाड़ी आंदोलन के प्रभाव से क्रांतिकारी साहित्य का जो माहौल बना उसके कारण नागार्जुन और त्रिलोचन जैसे सृजनशील प्रगतिशील कावियों की कविताएं ज्यादा अर्थवान बन जाती हैं। इसी दौर में रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताएं अपनी जनतांत्रिक पक्षधरता के कारण विचारों के केंद्र में आ जाती हैं। इस परिदृश्य में जिन्होंने कविता लिखना शुरू किया था उनमें वीरेन डंगवाल, कुमार विकल, दिनेश कुमार शुक्ल, मंगलेश डबराल, पंकज सिंह आदि कवियों ने हिंदी कविता की नक्सल परंपरा की अजस्र धारा को जिंदा रखा है। इसी कारण इन कवियों की कविताओं का फलक काफ़ी व्यापक है और उनमें पर्यावरण, बेदखली, जाति उत्पीड़न, स्त्री मुक्ति आदि जैसे विषय देखने को मिलते हैं।

वैसे तो समकालीन हिंदी कविता की नई पीढ़ी में अनेक महत्वपूर्ण कवि उभरकर आए लेकिन कुछ ही ऐसे प्रतिनिधि कवि हैं जिनके नाम बार - बार अन्य साहित्यकारों द्वारा भी लिए जाते हैं। ऐसे ही एक वरिष्ठ कवि है मंगलेश डबराल।

कवि मंगलेश डबराल की कविताओं में जो विचारों और संवेदनाओं की गम्भीर अभिव्यक्ति हुई है, वे उन्हें एक बुनियादी सरोकार के कवि के स्थान में पहुँचाते हैं। उनके काव्य का मुख्य विषय है विद्रोह और संघर्ष का संकल्प। कम से कम शब्दों में सामाजिक अन्यायों के विरुद्ध व्यंग्यात्मक आक्रोश व्यक्त करने में कवि सिद्धहस्त हो चुके हैं। कविताओं के द्वारा उपेक्षित चीजों को छूने का और स्थितियों को आँकने का उनका एक अलग ढंग है। यही समकालीन कवियों में मंगलेश डबराल को अलग पहचान प्रदान करती है।

किसी भी शोधार्थी के लिए ज़रूरी होती है अपने शोध - विषय के प्रति जिज्ञासा और रुचि। इसलिए किसी भी विधा/विषय के चुनाव का निर्णय शोधार्थी पर ही छोड़ दिया जाता है। कविताओं में मेरी रुचि और उनमें छिपे भावार्थ के प्रति जिज्ञासाएं, मुझे अधिक से अधिक पढ़ने के लिए प्रेरित करती रहती है। एक दिन यूट्यूब पर मंगलेश डबराल

जी का साक्षात्कार देखते हुए उनके विचार सुने तो यूंही मन में उनकी कविताओं को पढ़ने की इच्छा उत्पन्न हुई और उसी इच्छा के फलस्वरूप मैंने उनके काव्य संग्रहों को पढ़कर, उनपर शोध करना उचित समझा।

मंगलेश डबराल के कुल सात कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। हर काव्य संग्रह में अलग- अलग प्रवृत्तियां देखने और समझने को मिलती हैं। उन्होंने समाज और संस्कृति को केंद्र में रखते हुए अत्याधिक कविताएं लिखी हैं। स्त्री विषयक चिंतन, पारिवारिक समस्याएं, व्यक्ति मन के विविध रंग, बालक विषयक संवेदना, प्रेम व्यंजना, महानगरीय त्रासदी जैसे तमाम विषय उनकी कविताओं में मिलते हैं। प्रस्तुत शोध-कार्य के माध्यम से मुझे मंगलेश डबराल की कविताओं में छिपे इन्ही सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं को उजागर करना है।

मंगलेश डबराल की कविताओं की सबसे बड़ी खूबी यह है कि यहाँ कुछ भी नितान्त निजी या निपट सामाजिक नहीं है। व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों एक हो गये हैं। मंगलेश के लिए निजी, सामाजिक और राजनीतिक प्रसंग एक-दूसरे से अभिन्न और अखण्ड हैं। उनकी कविता सम्पूर्ण मानव-स्थिति की कविता है।

मंगलेश की कविताओं में समकालीन जीवन से सम्बद्ध कविता की प्रमुख विशेषतायें जैसे-आम आदमी के अन्दर की पीड़ा, तनाव, अबोधता, विवशता, सहिष्णुता, अकेलापन, समाज और राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, वर्तमान व्यवस्था एवं उच्चवर्ग की भीतरी स्वार्थपरता, अमानवीयता, जन-संघर्ष, अतीत की अपेक्षा वर्तमान को महत्त्व, घोर विद्रोह की भावना आदि को देखा जा सकता है|

मंगलेश डबराल की कविताएँ जीवन के कटु वास्तविकताओं को रूपायित करने में पूर्णतया सक्षम है। इसके लिए मंगलेश डबराल ने नये बिम्बों, प्रतीकों, और शब्द संकेतों से अपने काव्य को समृद्ध किया है। उनकी कवितायें मात्र पढ़ने या सुनने तक सीमित नहीं रहती बल्कि कहीं आत्मा को गहरे में जाकर छूते हुये उसे जीने के लिए प्रेरित करती है।

यह शोध-प्रबन्ध पाँच अध्यायों में विभक्त है |

प्रथम अध्याय: 'आज़ादी के बाद के परिदृश्य में हिंदी कविता' में भारत के स्वतंत्रता प्राप्ति बाद कविता के क्षेत्र में जो आंदोलन और बदलाव दृष्टिगोचर होते हैं, उनका क्रमिक उल्लेख है। उसी के साथ समकालीन कविता की

राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक पृष्ठभूमि के बारे में लिखा है। अध्ययन की सुविधा के लिए समकालीन कविता को आगे दशकों में बांटा गया है और प्रमुख कवियों का भी उल्लेख किया है।

द्वितीय अध्याय: 'मंगलेश डबराल की काव्य यात्रा पर विभिन्न आंदोलनों का प्रभाव' में मंगलेश डबराल पर उनके लेखन कार्य के दौरान जिन आंदोलनों का प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव देखा जा सकता है, उन आंदोलनों का, मंगलेश डबराल की काव्य-पंक्तियों के उदाहरण सहित उल्लेख किया है। इसमें मार्क्सवाद, नक्सलवाद, स्त्रीवाद, मानवतावाद आदि से जुड़ी कवि की विचारधारा को देखा जा सकता है।

तृतीय अध्याय: 'मंगलेश डबराल की कविताओं में अभिव्यक्त सामाजिक-सांस्कृतिक प्रश्न' में समकालीन कविता की मूल संवेदना के अधार पर मंगलेश डबराल की कविताओं का विश्लेषण प्रस्तुत है। जहाँ एक ओर उनकी कविताओं में समाज से जुड़े प्रश्न होते हैं, वही दूसरी ओर संस्कृति के प्रति गहरी चिंता भी दृष्टिगोचर होती है।

चतुर्थ अध्याय: 'समकालीन कविता में मंगलेश डबराल का महत्त्व' में मंगलेश डबराल की कवि के रूप में विशेषताओं का अध्ययन किया है। ऐसी कौनसी नवीनता उनमें है जो बाकी समकालीन कवियों में सहसा नज़र नहीं आती, इसपर गहराई से विचार किया है।

पंचम अध्याय: 'मंगलेश डबराल की काव्य भाषा' मे मंगलेश डबराल की कविताओं की भाषा, दृश्यात्मकता, संगीतात्मकता, प्रतीक - विधान, बिम्ब - विधान, एवं शब्द संपदा का अध्ययन किया गया है। इस अध्याय का उद्देश्य है मंगलेश डबराल की कविताओं के शिल्पगत धरातल के नव्यता की पहचान |

उपसंहार में शोध अध्ययन के दौरान आलोच्य कवि की जो विशेषताएँ दृष्टिगोचर हुई उन्हें प्रस्तुत किया है। यहाँ मंगलेश डबराल की उपलब्धियाँ और अवदान रेखांकित हैं।

अंत में 'परिशिष्ट - क' में मेरे द्वारा आलोचक रविभूषण जी से कवि मंगलेश डबराल संबंधित की गई बातचीत शामिल है। उसमें उन्होंने मेरे सभी द्वारा पूछे गए हर सवाल का बड़ी ही सरलता के साथ उत्तर दिया है। 'परिशिष्ट - ख' में उन आधार तथा सहायक ग्रंथों का, साक्षात्कार और पत्र - पत्रिकाओं की सूची दी गई हैं जिनकी सहायता से यह अध्ययन कार्य पूरा हुआ।

प्रस्तुत शोध कार्य को पूरा करने में गोवा विश्वविद्यालय एवं गोवा राज्य केंद्रीय पुस्तकालय विश्वविद्यालयों के पुस्तकालय का बहुत सहयोग रहा। साथ ही इपुस्तकलय , गूगल बुक्स, इंटरनेट आर्काइव्स, रेखता.com, इत्यादि ऑनलाइन से भी पुस्तकों के अध्ययन में सहायता मिली। अतः सभी लाइब्रेरी से जुड़े लोगों के प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

मेरे श्रेद्धेय निदेशक डॉ. बिपिन तिवारी जी की निरंतर प्रेरणा, आत्मीय सहयोग एवं असीम स्नेह मुझे हमेशा बल देता रहा। सर, आपके आशीष से ही यह शोध कार्य संपन्न होने जा रहा है। आपका सुयोग्य मार्गदर्शन एवं निर्देशन मेरे लिए सौभाग्य की बात है। आपकी मातृतुल्य वात्सलता के लिए मैं सदैव आपकी ऋणी रहूँगी।

आलोचक रविभूषण जी के प्रति भी आभार प्रकट करना परम कर्त्तव्य समझती हूँ। उनसे मंगलेश डबराल संबंधित अमूल्य जानकारियाँ एवं पुस्तकों का सहयोग मिला। उन्होंने कई ऐसी रोचक बातें बातचीत के दौरान बताई जो शायद ही कहीं देखने को मिले। साक्षात्कार के लिए उन्होंने जो अपना बहुमूल्य मुझे दिया इसके लिए मैं सदैव आभारी रहूँगी।

विभागीय गुरूजनों की स्नेहित पूछताछ हमेशा प्रेरणा देती रही है। मैं गुरूजनों की सदैव ऋणी रहूँगी, जिन्होंने सदैव मुझमें आत्मविश्वास भरने की कोशिश की और समय-समय पर मेरा मार्गदर्शन किया।

अंत में मैं उन सभी ग्रंथों के लेखकों तथा विद्वानों के प्रति नतमस्तक हूँ जिनके सहयोग तथा प्रोत्साहन से यह शोध-प्रबन्ध सम्पन्न हुआ है। इस कार्य में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जिस किसी का भी सहयोग रहा है, मैं उन सभी का आभार व्यक्त करती हूँ, लेकिन मैं इतना अवश्य कह सकती हूँ कि यह मेरा मौलिक कार्य है। अंत में मैं अपनी सीमित क्षमताओं को समझकर यह शोध-प्रबन्ध विद्वान् -परीक्षकों के समक्ष प्रस्तुत करती हूँ।

- कुमारी बेबीनंदा शेटकर

प्रथम अध्याय

आज़ादी के बाद के परिदृश्य में हिंदी कविता

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी कविता में विद्रोह के विविध आयाम और संदर्भ दृष्टिगत होते हैं। स्वतंत्रता से पहले की आधुनिक हिन्दी कविता विकासात्मक सोपानों में विभिन्न मोड़ लेती हुई प्रयोगवाद तक अपनी यात्रा तय करती है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता अपनी पूर्ववर्ती कविता का ही विकसित रूप है। छायावादी संस्कार और प्रगतिशील चेतना दोनों का सम्मिश्रण प्रयोगवाद में आकर हुआ था। प्रयोगवादी कविता में जो प्रवृत्तियाँ उभरकर आईं उन्होंने स्वतंत्र्योत्तर कविता को प्रभावित किया। लेकिन प्रयोगवाद और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता को एक ही भावधारा के अन्तर्गत समाविष्ट नहीं किया जा सकता। यह सही है कि जिन काव्य प्रवृत्तियों का बीजारोपण प्रयोगवाद में हुआ उन्होंने ही नयी मानसिकता के अनुरूप अपना रूप अधिकाधिक जटिल, सूक्ष्म और पैना बना लिया। विशेषतौर पर स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की 'नयी कविता' धारा में प्रयोगवादी संवेदना और शिल्प का विकसित और परिष्कृत रूप उभर कर सामने आता है।

प्रयोगवाद और नयी कविता के ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अन्तर स्पष्ट करते हुए डॉ० यश गुलाटी लिखते हैं कि- "असल में प्रयोगवादी और नयी कविता की प्रकृति का एक जैसा होना मुमकिन ही न था। नयी कविता प्रयोग-युग से भिन्न परिवेश की उपज थी। दोनों के बीच घटित होने वाली भारतीय स्वाधीनता की घटना की उपेक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि पराधीन जन और स्वाधीन नागरिक की मानसिकता कभी भी एक-सी नहीं हो सकती। स्वाधीनता-प्राप्ति के साथ नयी आशाएँ और आकांक्षाएँ पैदा हुई पर इसके साथ जुड़े हुए देश-बँटवारे, भयानक रक्तपात, लाखों लोगों की अदला-बदली और महात्मा गांधी की हत्या जैसी मानवीय त्रासद घटनाओं ने दुःखद कुंठा को भी जन्म दिया। परिदृश्य में भी व्यापक और गहरा बदलाव आया। अनेक पीढ़ियों से सुख-दुःख में साथियों की जगह पर ऐसे अजनबी आ बसे थे जिनके साथ धर्म के अलावा यहाँ के मूल निवासियों का कुछ भी साझा न था, जिनके रीति-रिवाजों, रहन-सहन, खान-पान, मानदंडों और मूल्यों से यहाँ के लोगों को परायेपन का ही बोध होता था। उनके प्रति अपनत्व की बजाय एक अवज्ञा, एक तिरस्कार का भाव ही उनमें मुखर था।"[1] इस प्रकार की स्थितियों ने स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता को दूर तक प्रभावित किया। इसके

[1] **गुप्त जगदीश, नयी कविता - स्वरूप और समस्याएं, पृ. 61**

साथ-साथ स्वातंत्र्योत्तर कालीन परिवेश ने भी अपनी निर्णयात्मक भूमिका का निर्वाह करते हुए तथा स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की समूची बनावट को प्रभावित करते हुए उसे आधुनिक भाव बोध से जोड़ दिया। आज़ादी के कुछ वर्षों के भीतर ही स्वाधीनता-संघर्ष से जुड़े हुए अधिकांश स्वप्न टूटने लगे थे। चौथे दशक में शुरू होने वाली मोहभंग की प्रक्रिया में स्वतंत्रता के पहले एकाध वर्ष के लिए चाहे ठहराव आ गया था पर जल्द ही न केवल फिर से उसकी शुरूआत हो चुकी थी, बल्कि वह पहले से ज्यादा तेज भी हो गई थी। इस दौरान औद्योगीकरण और नगरीकरण की प्रवृत्तियों की गति भी तीव्र हो गई थी। औद्योगिक सभ्यता की सारी विकृतियों और तनावों के साथ महानगर भारतीय मानचित्र पर उभरने लगे थे। तकनीकी विकास ने मनुष्य और उसके श्रम का अवमूल्यन कर दिया था और उसे एक मशीनी पुर्जे के स्तर पर लाकर डाल दिया था। गाँव की इकाई में, समाज का अविच्छिन्न अंग न होने पर भी, निजी स्वातंत्र्य का बोध उसे होता था और उसमें अपनी अस्मिता पहचानकर जिस गौरव का अनुभव वह करता था, अब धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा था।

वैज्ञानिक आविष्कारों और उपलब्धियों से जिन्दगी की प्रणालियों में अन्तर आता जा रहा था। लोगों की मानसिकता को भी बदल दिया गया था। उनकी आस्थाएँ डगमगाने लगी थीं, उनके सारे विश्वास, सारी मान्यताएँ, सारे मूल्य खंडित हो गए थे। ईश्वर की इच्छा और धर्म द्वारा दी गई व्यवस्था और धर्माश्रित कल्पित समाधानों में मनुष्य अपने अनेक प्रश्नों और शंकाओं का समाधान पाता था पर अब वह इन सहारों से वंचित था। परम्परा से संजोए-सहजे मूल्यों के अर्थहीन पड़ जाने से वह दिग्भ्रम का शिकार होकर रह गया था। ऐसी मानसिकता में जीने वाला औसत भारतीय मानस एक ओर अपने ही देश में व्याप्त स्थितियों और संदर्भों से जूझने लगा, साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति ने भी उसकी विचारणा शक्ति को वृहत्तर संदर्भों से जोड़ कर उसकी आस्थावादी धारणा को गहराई से झकझोर दिया। आज़ादी के बाद जनसंख्या के बढ़ते दबाव, लगातार बढ़ती बेरोजगारी, नौकरशाही की लापरवाही, राजनैतिक नेताओं के भ्रष्टाचार, महँगाई और समाजव्यापी अनैतिकता आदि के सम्मिलित प्रभाव ने व्यक्ति के मन में गहरी निराशा और व्यथा पैदा कर दी। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शीत युद्ध, विभिन्न देशों की आपसी तनातनी और तीसरे महायुद्ध की आशंका की छाया में पलने वाले तथा राष्ट्रीय स्तर पर भ्रष्ट, अनैतिक, संवेदना शून्य जड़ व्यवस्था के सामने बेबस, लाचार तथा परम्परागत विश्वासों, मूल्यों, आस्थाओं से वंचित रचनाकार की कविता ही नयी कविता है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की समग्र चेतना को समझने के लिए, उसका आकलन करने के लिए अगर उसे नयी कविता और समकालीन हिन्दी कविता जैसे आधारों में बाँट दिया जाए तो इनके विश्लेषण में आसानी होगी। स्वतंत्रता से सन् 1960 ई० तक की कविता में पूर्ववर्ती काव्य परम्परा का विकसित रूप दिखाई देता है। स्वतंत्रता से पहले का कविता दौर अपने अंतिम पड़ाव में प्रयोगवाद तक सीमित हो गया। प्रयोगवाद के बाद उभरने वाला कविता दौर भाव और विचार में उससे आगे की कड़ी है जहाँ पर प्रयोगवादी कविता आकर अवरुद्ध हो जाती है। हालांकि भाव और विचार के संतुलन के आरम्भिक बीज प्रयोगवादी कविता की विशिष्टता बने हैं लेकिन भाव और विचार को अपनाने वाली यह कविता अपने समय के यथार्थ को लेकर चलती है, उसका काव्यात्मक मुहावरा सार्वकालिक नहीं है। यही कारण है कि स्वतंत्रता से सन् 1960 ई० तक की कविता अपने समय के यथार्थ को लेकर चलने वाली कविता है जिसमें भाव और विचार का संतुलन प्रयोगवादी कविता द्वारा प्रशस्त मार्ग पर वेग से चलता हुआ समकालीन कविता तक पहुँचता है। इस कविता को 'नयी कविता' माना गया है। यश गुलाटी लिखते है कि "यह नाम वास्तव में उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया है जो आज़ादी के बाद बदले हुए परिवेश में जिन्दगी की जटिल और चकरा देने वाली वास्तविकताओं को झेल रहे मानव की परिवर्तित संवेदनाओं को नये मुहावरे में अभिव्यक्त करती है।"[2]

परिवर्तित संवेदनाओं का नया मुहावरा ही नयी कविता को प्रयोगवादी कविता से सृजनात्मक स्तर पर अलगाता है। नयी कविता का प्रयोगवाद से सम्बंध तो है, खासतौर पर भाव और विचार की उस जमीन से जिसे प्रयोगवाद ने निर्मित किया था। पर, प्रयोगवाद से उसका मौलिक अन्तर भी है। नयी कविता प्रयोगवाद से ऐतिहासिक आधार पर ही नहीं, तात्विक और संवेदनात्मक आधार पर भी भिन्न है। नयी कविता नयी युगीन चेतना और नयी सौंदर्य दृष्टि की सूचना देती है। प्रयोगवादी कविता में प्रयोग बाह्य और शिल्पिक था जबकि नयी कविता में प्रयोग कविता के पूरे संरचनात्मक तंत्र में व्याप्त है। इसके अलावा प्रयोगवादी कवियों की जीवन-दृष्टि पर मार्क्स और फ्रायड का सीधा प्रभाव है वहाँ नए कवियों पर यह प्रभाव उनकी मानसिकता का सहज अंग बनकर व्यक्त हुआ है। प्रयोगवादी कवियों ने विषयगत अभिजात्य से तो मुक्ति पा ली पर उनकी दृष्टि में आभिजात्य बना रहा जो मानव-व्यक्तित्व के वैशिष्ट्य की प्रतिष्ठा के आग्रह को लेकर

[2] **मनोहर राम, युगकवि स्वरूप : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. 77**

सामने आया। नयी कविता ने इस आग्रह को अमान्य ठहराया और व्यक्ति के निजत्व, महत्त्व और शक्ति को रेखांकित किया।

प्रयोगवादी कविता और नयी कविता का यह भेद विद्रोह का सूचक है जिसे कवियों ने अपनी सृजनात्मक क्षमता द्वारा उत्पन्न करके तत्कालीन परिवेशगत दबावों को झेलने, नये भाव-बोध से जुड़ने और नयी मानसिकता के अनुरूप अपने को ढालने के औजार रूप में ग्रहण किया, इसीलिए स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में विद्रोह एक प्रक्रिया के रूप में समूची काव्य भंगिमा को प्रभावित करता है।

सन् 1960 के बाद की हिंदी कविता

सन् 60 के बाद कविता अपने तेवर और काव्यात्मक बुनावट में जिस तेजी से परिवर्तित हुई है, इसे ही लक्षित करके उसे समकालीन कविता के नाम से पुकारा गया है। वास्तव में, स्वतंत्रता के बाद का कविता दौर जो सन् 60 तक संवर्धित हुआ वह अपने भीतर अनेक ऐसी काव्य-भंगिमाओं को समेटे हुए था, जो समकालीन कविता में अपनी पूरी गतिशीलता में उभर कर सामने आई। संवेदनात्मक और संरचनात्मक धरातल पर 'नयी कविता' का जो विवेचन किया गया है, उनसे ये रूप तो उद्घाटित होते ही हैं, साथ ही समकालीन कविता में विद्रोह का जो सशक्त स्वरूप बना उसकी विद्रोही मानसिकता का बीजारोपण भी उसी काल खंड में हुआ। डॉ० रामदरश मिश्र ने 'नयी कविता' के इस विद्रोही तेवर और रुख के अनेक पहलुओं की ओर संकेत किया है। "साठ के बाद की कविता में असन्तोष, अस्वीकृति और विद्रोह का स्वर बहुत साफ तौर पर उभरा है। नयी कविता में भी असन्तोष और अस्वीकृति का स्वर विद्यमान है। मुक्तिबोध में तो है ही अन्य कवियों में भी है। यह स्वर कहीं तो व्यंग्य-रूप में है, कहीं खुले रूप में। किन्तु साठ के बाद इस स्वर ने और तीखे व्यंग्य तथा विद्रोह का रूप धारण कर लिया है..."[3]

नयी कविता संत्रास, यातना, टूटन, दुविधा की अनुभूति की कविता है। कहा जा सकता है कि नयी कविता जिस युग की उपज है वह युग पीड़ा बोध अधिक दे सकता था, विद्रोह कम। स्वराज्य-प्राप्ति की आरम्भिक बेला में जो यातना का दर्द

[3] **मिश्र रामदरश, आजकल, अंक- 22, पृ. 03**

उग आया था वह अपने साथ भविष्य के प्रति विश्वास और आशा का स्वर भी अवश्य ही लिपटाये था। मोहभंग पूरे रूप में नहीं हुआ था, इसलिए नयी कविता में यातना-बोध है, अस्वीकृति का स्वर भी है, किन्तु विद्रोह का उभार नहीं है। लेकिन समकालीन कविता के लिए विद्रोह की क्या शक्ल और भूमिका होगी उस संदर्भ में सन् 1960 तक का दौर महत्वपूर्ण है।

नयी कविता का विद्रोही स्वर समकालीन कविता में आकर बदल गया। स्वतंत्रता आंदोलन का उत्साह और स्वतंत्रता प्राप्ति का संतोष अब देश के नवनिर्माण के जोश में व्यक्त होने लगा। जाहिर है कि जोश में होश नहीं रहता, अतः उस युग की कविता तत्कालीन राजनीति और व्यवस्था के प्रति धुँधले मोह से भरी पड़ी है। धीरे-धीरे मोह के बादल छटने लगते हैं और साठ तक आते-आते यह भावना गहरी होने लगती है कि हमने जो आज़ादी प्राप्त की है वह कहीं झूठी तो नहीं। 'तमाम बाहरी शोर-शराबे, पंचवर्षीय योजनाओं, भाखड़ा बाँध और पंचशील के सिद्धांतों के होते हुए भी "देश की जनता भूखी है" की भावना जोर पकड़ने लगी। सन् 1962 में भारत-चीन युद्ध होता है, इस युद्ध के कारणों और परिणामों को छोड़ भी दिया जाये तो एक बात साफ़ हो गई कि भारत एक शक्तिशाली देश नहीं है। यहीं से शक विश्वास में बदल जाता है और आज़ादी के मोहभंग के बाद व्यवस्था का विरोध शुरू होता है। इसी मोहभंग की जो तस्वीर उभरी उसके परिणामस्वरूप विद्रोह की चेतना ने सक्रिय आधार भूमि प्राप्त कर ली जिसका अभाव नयी कविता में खटक रहा था। मोहभंग और अनिश्चयात्मक परिवेश ने समकालीन कविता को भीतर तक झकझोर दिया जिसके कारण कवियों ने व्यवस्था और सत्ता का विरोध करना शुरू कर दिया।

समकालीन कविता: पृष्ठभूमि

समकालीन कविता का प्रारम्भ यूँ तो निराला से ही हो गया था क्योंकि मूलतः छायावादी कवि होते हुए भी उनकी कविता में भावी कविता के बीज विद्यमान हैं। अपने स्फुट रूप में तो समकालीन कविता छठे दशक के पूर्व ही लिखी जाने लगी थी, किन्तु उसके पल्लवन का पूर्ण अवसर उसे बाद में मिला। समकालीन कविता के नामकरण से पूर्व विभिन्न प्रकार की कविताओं का दौर चल रहा था। उन कविताओं को विभिन्न नाम भी दिये गये, किन्तु ये नाम अपनी पहचान बनाने में ही लगे रहे। उस समय की कविता अपने लिए ज़मीन तलाश रही थी।

समकालीन कविता की यह पहचान सातवें दशक से बनने लगी। समकालीन कविता से आशय "आधुनिक युग की वह विशिष्ट काव्यधारा जो प्रारम्भ चाहे जब हुई हो, पर आज भी मौजूद है, समकालीन है या समसामयिक है। एक वाक्य में यह वह कविता है जो आज की कविता का प्रमुख रूप है।"[4] कविताओं में उभरती जन-चेतना को रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल, शमशेर और मुक्तिबोध ने एक नया आयाम दिया, किन्तु इस नये वाद के प्रवर्तन का श्रेय इन समस्त कवियों में से किसी ने भी नहीं लिया। इन कवियों ने जनता की चित्तवृत्तियों को अपने काव्य में विश्लेषित किया। इस कविता के लिए जब किसी नये नाम का दावा नहीं किया गया तो इसके लिए नाम समीक्षा की ओर से उभरा "समकालीन कविता"। इसलिए समकालीन कविता की पृष्ठभूमि के रूप में उस प्रतिपक्ष को जिम्मेदार माना जा सकता है जो समकालीन कविता का प्रेरक बना।

राजनीतिक पृष्ठभूमि

राजनीति का साहित्य पर सदा प्रभाव पड़ता है। समकालीन कविता के पीछे अनेक राजनीतिक घटनाओं की प्रतिक्रिया बहुत प्रभावी रही। सन् 1960 के बाद ऐसी अनेक राजनीतिक घटनाएँ घटी जिसके फलस्वरूप आदमी का नव स्वतन्त्रता और उससे मिलने वाले काल्पनिक लोक की स्थिति से मोहभंग हो गया। उसके मन में नवीन विचारों का उदय हुआ, जिसके कारण उसने स्वयं को सत्ता पक्ष के विरोध में खड़ा कर दिया। "स्वाधीनता के बाद सरकार ने जो नारे उछाले पंचवर्षीय योजनाओं के प्रारूप, तत्सम्बन्धी लम्बे चौड़े वायदे और वक्तव्यों का जो कुहासा उठाया था उसमें जनता की हालत में कोई अंतर नहीं आया।"[5] पक्ष और आम जनता के बीच की खाई अनवरत् चौड़ी होती रही। समकालीन कविता को प्रभावित करने वाली राजनीतिक घटनाओं में प्रमुख थी- 1962 का चीनी आक्रमण, 1964 में पं० जवाहलाल नेहरू की मृत्यु, 1965 कां भारत-पाक युद्ध, 1966 में लालबहादुर शास्त्री की आकस्मिक मृत्यु । इन घटनाओं से भारत में राजनीतिक अस्थिरता व्याप्त हो गई। इस राजनीतिक रिक्तता और तिक्तता के भाव से समकालीन कविता पूरी तरह प्रभावित हुयी। देश में नक्सलवादी खूनी क्रान्ति का बोलबाला हो गया। सन् 1967 में अनेक राज्यों में बनी सरकारों का

---

[4] सं. डॉ. रणजीत, 'अद्यतन हिन्दी कविता', पृ. 01

[5] डॉ. गोविन्द रजनीश, 'समकालीन हिन्दी कविता की संवेदना, पृ. 11

नेतृत्व समाजवादियों के हाथ में रहा। सन् 1971 में भारत-पाक युद्ध और बांग्लादेश का उदय हुआ। केन्द्रीय सत्ता अधिनायकवाद की ओर बढ़ने लगी। सन् 1975 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार इन्दिरा गाँधी का चुनाव रद्द कर दिया गया। इस निर्णय के फलस्वरूप सम्पूर्ण राष्ट्र में आपातकाल लागू कर दिया गया। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर भी प्रतिबंध लग गया। स्वतंत्रता के पश्चात् जनतंत्र में यह पहली बार हुआ था कि सम्पूर्ण स्वतंत्रता पर प्रत्यक्ष नियंत्रण किया गया हो। साहित्यकार भी इससे अछूते नहीं रहें। सन् 1977 में प्रतिक्रिया स्वरूप पहली बार काँग्रेस सत्ता से च्युत हो गयी। पुनः नई सम्भावनाओं का उदय हुआ किन्तु सत्यता में परिणत होने से पहले ही उसका पटाक्षेप हो गया। दो वर्षों के उपरान्त काँग्रेस पुनः सत्ता में वापस आई, किन्तु उभरते आतकंवाद के फलस्वरूप सन् 1984 में इन्दिरा गाँधी की हत्या हुई। इस प्रकार राजनीतिक अस्थिरता का दौर चलता ही रहा। भ्रष्टाचार, आतंकवाद, जातीय विद्वेष का चारों ओर बोल-बाला बढ़ने लगा। राजीव गाँधी की हत्या के पश्चात् पूरे देश में संघर्ष की अग्नि भड़क उठी। "समग्र रूप से हमारा वर्तमान परिवेश आज की असहजताओं से घिरा है, जहाँ कपटपूर्ण और स्वार्थी राजनीतिक और धार्मिक स्तर पर मक्कारी की हद तक पहुँची भंगिमाओं के दर्शन होते हैं।"[6] इसी अस्थिरता, विसंगति, विद्रूपता, असहजता और असामाजिकता का स्वर समकालीन कविता में मुखरित होता है।

आर्थिक पृष्ठभूमि

स्वतंत्रता के पश्चात् प्रारम्भिक दशकों में देश ने तीव्रता से औद्योगिक प्रगति की, लेकिन पूंजीवादी व्यवस्था के चलते ग़रीबी रेखा से नीचे जीने वाली जनता और भी अधिक अभिशप्त जीवन जीने को बाध्य हो गई। मिश्रित अर्थव्यवस्था और साम्यवाद से धनी वर्ग और निधन वर्ग के बीच की खाई और भी अधिक चौड़ी ही गई। आपातकाल के पश्चात् राजनीतिक-सामाजिक संघर्ष के कारण विकास की प्रक्रिया अवरूद्ध हुयी। जनता के मन में किसी भी राजनीतिक दल के प्रति आस्था नहीं रह गयी थी। "जब तक गरीब जनता को पेट भर भोजन, तन ढँकने को वस्त्र और रहने को मकान नहीं मिलता, तब तक उसके जीवन में आशा उल्लास का प्रश्न ही नहीं उठता।"[7] इसी के फलस्वरूप साहित्यकारों की समस्त

[6] **कल्पाचन्द्र, समकालीन कवि और काव्य, पृ.19**

[7] **डॉ. ज्ञान चंन्द्र गुप्त, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, पृ. 140**

राजनीतिक दलो से भंग हुई प्रतिबद्धता को देखते हुए कविता ने समकालीन कविता के रूप में पहचान बनायी। आज भी भारतीय शासनतन्त्र में उद्घोष तो समाजवाद का है किन्तु कर्म पूंजीवादी है। उपभोक्तावाद और भूमण्डलीकरण जिस प्रकार भारतीय संस्कृति को पूर्णरूपेण प्रभावित कर रहें हैं। उससे उत्पन्न संकट को समकालीन कविता पहचान कर व्यक्त कर रही है। डॉ वीरेन्द्र सिंह के अनुसार "उन्होने 'समाजवाद' के नाम पर पूंजी को अपने हित में एकत्र किया और इस तरह सम्पत्ति को बढ़ाना और उसका उपयोग करना ही मानो राष्ट्रीय विकास और खुशहाल का पर्याय बन गया। ....इसमें विदेशी पूंजी उन्हीं की शर्तों पर लग रही है जिसका सांकेतिक रूप हमें समकालीन कविता में भिन्न रूपाकारों के द्वारा प्राप्त होता है।"[8]

सामजिक पृष्ठभूमि

सन् 1960 के बाद अनेक ऐसी घटनाएँ घटी जिनके कारण आम आदमी नव-स्वतन्तत्रता और उससे मिलने वाले कल्पनालोक की स्थिति से ऊबकर एक नयी सोच के लिए प्रयासरत हो गया। समकालीन स्थिति में औद्योगिक सभ्यता और महानगरीय चेतना व्याप्त है। महानगरीय परिवेश में जातीय या साम्प्रदायिक अलगाव नहीं होता। लोगों को आशा होती है कि महानगरीय परिवेश में समानता होगी। धर्म, वर्ग तथा साम्प्रायिक भेदभाव प्रभावी नहीं होगा, किन्तु समाज में राजनीति के प्रवेश से समस्त आशायें निराधार सिद्ध होती हैं। ये तत्व महानगरों में विघटन के कारण बनते हैं। उच्च वर्ग निम्न वर्ग और मध्य वर्ग में तो समाज पहले से ही बँटा था राजनीतिक विद्रूपता के कारण समाज में वर्ग वैषम्य और भी अधिक बढ़ गया।

"उच्च वर्ग, मध्य वर्ग, संघर्षरत मध्य वर्ग, निम्न वर्ग, सर्वहारा वर्ग इस वर्गीय चेतना से मुख्य विभाग किया जा सकते है।"[9] मध्यवर्ग बौद्धिक चेतना से युक्त होते हुए भी संघर्षरत जीवन जीने को विवश है। अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में लगा यह वर्ग बौद्धिकता के कारण अपनी इस अवस्था के लिए जिम्मेदार कारणों को जानते हुए भीअपनी

[8] **डॉ. वीरेन्द्र सिंह, साहित्य और साहित्येतर संवाद सूत्र, पृ.115**

[9] **डॉ. रमेश चंन्द्र शर्मा, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 399**

सीमाओं में बंधा हुआ है। निम्नवर्ग तो अपनी अपरिहार्य आवश्यकताओं को पूर्ण करने के प्रयास में ही अपना पूरा जीवन लगा देता है। इस प्रकार समकालीन कविता के पीछे की सामाजिक पृष्ठभूमि ऐसी है, जिसमें असमाजिकता, भ्रष्टाचार, स्वार्थी-विद्रूप राजनीति विद्यमान है। इन सबके मूल में भ्रष्ट राजनीति ही है। भारतीय समाज भी एक द्वन्द्व की स्थिति में है, न तो अपनी परम्पराओं से सम्बद्ध और न ही पूर्णतया आधुनिक। "इसे हम मूल्यहीन भीड़ कह सकते हैं, समाज नहीं।"[10] इस प्रकार समकालीन कविता की सामाजिक पृष्ठभूमि में ऐसा ही सामाजिक परिवेश व्याप्त है, जो समकालीन कविता के अन्तस में काव्य के रूप में परिव्याप्त है।

सन् 1960 के बाद की कविता में जो स्वर उदित हुए समकालीन कविता के बीज रूप में विद्यमान रहे। यह कविता अपनी पूर्ववर्ती कविताओं से पूर्णतया भिन्न है। अध्ययन की सुविधा के लिए आगे समकालीन कविता के विभिन्न चरणों को दशकों में बाँटा गया है।

सातवें दशक की हिंदी कविता

हिन्दी कविता का सातवां दशक समग्र रूप से सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक असन्तोष का समय है। सन् 1974 तक आते-आते कविता का आशावादी स्वर लुप्त हो गया। 'राजनीति' राष्ट्र की राजनीति से ऊपर उठकर व्यक्ति की राजनीति बन गई थी। देश की सामाजिक व्यवस्ता में अस्थिरता आ गई। आर्थिक व्यवस्था बिगड गई और सांस्कृतिक क्षेत्र में मानव मूल्यों का विघटन बढ़ गया। इस प्रकार शासक पार्टी का आन्तरिक कलह, बेरोजगारी, महंगाई औद्योगीकीकरण में अवरोध, विदेशी ऋण, शोषण, भ्रष्टाचार आदि से जनमानस पूर्ण रूप से असन्तुष्ट बन गया। इस व्यवस्थाजन्य विसंगतियों के विरुद्ध प्रगतिवादी-जनवादी कवि सजग होने लगे। हम जानते हैं कि सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में देश में गैर-कांग्रेसी सरकारें बनी। लेकिन देश के शोषक सत्ताधारीवर्ग में कोई बदलाव नहीं आया। इनसे उत्पन्न मोहभंग की स्थिति ने 'नक्सलबाडी आन्दोलन' को जन्म दिया। इस प्रकार व्यवस्था-विरोधी जन आन्दोलनों और सामयिक

[10] **कल्याण चन्द्र, समकालीनता और काव्य, पृ.19**

परिस्थितियों में आए कुछ बदलावों के कारण प्रगतिवादी-जनवादी आन्दोलन और भी सशक्त हो गया। मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों को नक्सलबाड़ी आन्दोलन ने प्रभावित किया।

इस अतिक्रान्तिकारी चेतना से प्रभावित कवियों ने अकविता तथा अन्य इसी तरह के अराजक यथार्थ विरोधी काव्यान्दोलनों के विरुद्ध संघर्ष में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर दी। अकविता से जुड़े अनेक कवियों को इस अतिक्रान्तिकारी चेतना ने प्रभावित किया । फलस्वरूप कुछ कवियों में वैचारिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई। वे अपने दिशाहीन, मूल्यहीन वातावरण से बाहर निकलकर जनवादी कवि बन गए। धूमिल, चन्द्रकान्त देवताले, लीलाधर जगूडी, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह आदि अनेक कवियों में इस बदलाव की प्रक्रिया देखी जा सकती है। इसके अलावा नए जनवादी कवियों ने समकालीन यथार्थ को नया रचनात्मक धरातल प्रदान किया। कुछ कवि स्वयं को समकालीन घोषित करने के साथ-साथ जनवादी धारा के विरोध में अपनी कलावादी रुझानों को समकालीन कविता की मुख्यधारा के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते थे। उनके काव्यों में वैयक्तिक यथार्थबोध के महत्त्व होने के कारण वे अज्ञेयवादी परम्परा के माने गए, क्योंकि ये कविताएँ मध्यवर्गीय दिशाहीनता, टूटते-बिखरते सम्बन्धों की छटपटाहट, अमूर्तता आदि से ज्यादा प्रभावित हैं। इस प्रकार सातवें दशक के काव्य विकास के बारे में अगर हम सोच विचार करें तो समझ सकते हैं कि इन कविताओं में समसामयिक परिस्थितियों का यथार्थ वर्णन है, स्थिति-बोध है, शब्द शिल्प है और कुछ कलात्मक नवीनता भी है। डॉ. ललिता अरोडा की राय यहाँ सार्थक लगती है-"सातवें दशक की अधिकांश कविता में मनुष्य को मनुष्य न रहने देने वाली शक्तियों की ठोस पहचान पाने की कोशिश की और न ही औसत मनुष्य के औसत होने के सन्दर्भ को अपने समय के ठोस जीवन ब्यौरों में मूर्तिमान करने का प्रयास किया।"[11] इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समय के साथ अपना अस्तित्व बनाए रखने में तथा विविध स्थितियों के बीच अपनी स्थिति-विशेषता सिद्ध करने में इस समय की कविताएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाकर आगे बढ़ रही थीं।

सन् 1975 भारतीय जनता के जीवन की एक अविस्मरणीय घटना का काल है। उस समय की प्रधानमंत्री श्रीमति इन्दिरा गांधी ने आपातकाल की घोषणा की। यह राजनैतिक स्तर पर एक बहुत बड़ी घटना होने के कारण देश भर में भारी हलचल मच गई। जनवादी कवियों ने जनवादी शक्तियों और उनकी गति विधियों पर किया गया हमला स्वीकार किया।

[11] **डॉ. ललिता अरोड़ा, नई कविता का अनुशीलन, पृ. 116**

मुक्तिबोध, राजकमल चौधरी, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन आदि सब नई समझ से लिखने लगे। इसके बाद कवियों का एक समूह ही काव्यक्षेत्र में आया। कुमारेन्द्र पारसनाथ, ज्ञानेन्द्रपति, धूमिल, लीलाधर जगूडी, श्रीराम तिवारी, आलोकधन्वा, केदारनाथ सिंह, क्रान्तिमोहन, वेणुगोपाल, विजेन्द्र, पंकज सिंह, शशिप्रकाश, कमल किशोर भारद्वाज, अश्वघोष, नचिकेता, श्रीहर्ष, अक्षय उपाध्याय, आनन्द प्रकाश, निर्मल शर्मा, कौशल किशोर, नन्द भारद्वाज आदि वाम कविता के प्रमुख कवि हैं। इनमें धूमिल, जगूड़ी, देवताले, रघुवीर सिंह, जैसे कवियों ने अपनी कविताओं के द्वारा तद्युगीन राजनीति को स्पष्ट करने के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। नेताओं की निरर्थक नारेबाजी, उनके व्यक्तिव के दोमुँहेपन, चुने गए प्रतिनिधियों की गैर जिम्मेदारी आदि चरित्रहीनता का विरोध करने के लिए व्यंग्य का प्रमुख माध्यम अपनाया। प्रमुख रूप से प्रजातन्त्र की उपलब्धि, चुनाव, कुर्सी लिप्सा, आदि पर कवियों की सीधी दृष्टि पड़ी और उसे खुलकर बताने का प्रयत्न इन कवियों ने शुरू किया। इन कवियों में परिवर्तनकारी शक्तियों से मिलकर संघर्ष करने की प्रबल इच्छा भी मौजूद है। इस प्रकार सातवें दशक के अन्त तक आते-आते कवियों की वैयक्तिक और सामूहिक जिम्मेदारी बढ़ती हुई दिखाई पड़ती है। सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में फैली अनेक कुरीतियों और विसंगतियों के विद्रोह और विरोध को लेकर लिखी गई कविताओं की संख्या भी अत्यधिक है। एक प्रकार से व्यक्तिवाद से जनवाद की ओर आगे बढ़ने का साहस इस युग के कवियों की सही पहचान है।

आठवें दशक की हिंदी कविता

सातवें दशक के अन्त तक कविता में मानवीय जीवन के दबावों, अन्तर्विरोधों और रिश्तों को विकृत करनेवाली शक्तियों की असलियत पर तीखा प्रहार करते हुए, सम्पूर्ण यथार्थ को उखाड़कर प्रस्तुत करने का प्रयत्न मिलता है। आठवें दशक के आरम्भ होने तक कविता आन्दोलनों और चमत्कारों से मुक्त रही थी। फिर युग जीवन का स्पन्दन काव्य का विषय हुआ। नए-पुराने सभी कवि अपनी सामाजिक जिम्मेदारी समझकर जन जीवन से जुड़ी कविताएँ लिखने लगे। वे स्वतन्त्र भाव से जीवन की सार्थक अभिव्यक्ति करने लगे। केदारनाथ सिंह जैसे कवियों ने सीधे-सादे रूप में आम आदमी की जिन्दगी को महत्त्व दिया। कविता पूर्ण रूप से मानव पर केन्द्रित रही। मानवीय गरिमा और प्रतिष्ठा के लिए समता के सिद्धान्त के साथ विस्तृत फलक को कविता का आधार बनाया। आपातकाल के कारण इस समय भारतीय जन मानस

को नितान्त नई स्थिति से गुजरना पड़ा। यदि हम ध्यान से देखे तो समझ सकते हैं कि सातवें और आठवें दशक की कविताओं में मूलतः प्रहार और पर्दाफाश की प्रवृत्तियाँ बहुत अधिक थीं। कवि के स्वर में असहमति तथा अस्वीकार की गुंजाइश और कवि की विद्रोही चेतना व्यक्ति को सामूहिकता साहसिकता प्रदान करती रहती थी। विविध सामाजिक-राजनैतिक और आर्थिक दबावों ने यथास्थिति के प्रति तीव्र छटपटाहट के साथ परिवर्तन का निरन्तर आग्रह दर्शाया। कविता युग चेतना से जुड़कर सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र के ज्वलन्त समस्याओं के प्रति अपना सक्रिय हिस्सा निभाने की जागरुकता प्रकट करती रही। इस प्रकार प्रमुख रूप से सातवें और आठवें दशक की रचनाओं में कवियों की वामपंथी सोच उभरकर आई। इस समय राजनैतिक पक्षधर मानवीय प्रतिबद्धता में बदलते प्रतीत होते है। मानव जीवन के विविध पक्षों के विकास में उपस्थित बाधाओं को कविता का रूढ़ हुआ रूप नव संस्कार के साथ मानवीय प्रतिष्ठा में संलग्न मिलता है। इस प्रकार नवें दशक की कविता धीरे-धीरे रूपायित हुई और इसको बहुत अधिक जिम्मेदारियाँ निभाने का कार्य संलग्न हुआ। व्यवस्था परिवर्तन और समाजवादी व्यवस्था की स्थापना इनमें प्रमुख थी । प्रतिबद्ध कवियों की पीढ़ी में चीख-चिल्लाहट, आक्रोश, उत्तेजन के स्थान पर एक सामाजिक संवेदनशीलता और कलात्मक परिपक्वता की आवश्यकता महसूस हुई। आज की कविता चारों ओर फैले अमानवीकरण को देखती है। उसका आक्रोश केवल राष्ट्रीय परिदृश्य को लेकर ही नहीं एक गहन मानवीय सरोकार उनके आगे के मार्ग में है, इसके प्रति भी कवियों को सोच विचार करने की आवश्यकता है। आठवें दशक की कविता के बारे में अनंत मिश्र तिवारी का मत है- "आठवें दशक की कविता अपनी आक्रात्मकता के लक्ष्य में परिवर्तन करती प्रतीत होता है ।"[12]

इस दशक की कविताओं में नारी की संवेदनाओं को भी प्रमुख स्थान मिला है। उनके अस्तित्व, महत्त्व और उपस्थिति की बात इस दशक की कविताओं में देखने को मिलती है । आज के कवि की संघर्ष चेतना यह स्वीकार करती है कि जीवन वही है जहाँ विरोधी तत्त्वों की उपस्थिति है। मोहभंग के विभिन्न स्तरों से गुजरता हुआ आज का मनुष्य और उसकी व्यथा व्यक्त करने की प्रवृत्ति इस दशक के काव्य रचनाओं में पाई जाती है । औसत मनुष्य की सम्पूर्ण जिन्दगी के सन्दर्भ में यह काव्यात्मक प्रतिबद्धता दिखाई पड़ती है। आठवें दशक के कवियों ने सामाजिक ढाँचे की जटिलताओं के पक्ष में अपनी वैयक्तिकता बनाए रखने की कोशिश की। औसत आदमी ने अपने वैयक्तिक अनुभवों का समीकरण प्रस्तुत किया।

[12] **अनंत मिश्र तिवारी, आठवें दशक की कविता, दस्तावेज़, अंक - 13-14, पृ. 205**

इस दशक के कवियों में भवानी प्रसाद मिश्र, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, शमशेर बहादुर सिंह आदि के साथ केदारनाथ सिंह, रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा, दुष्यन्त कुमार, अशोक वाजपेयी, कमल चौधरी, लीलाधर जगूडी, श्रीराम शर्मा, रामकुमार कुंभज, मधुकर आदि कवियों का भी सम्मिलित योगदान विद्यमान है। आन्दोलनों को उभारकर आए हुए कवियों में जगदीश चतुर्वेदी, देवताले, परमार, गंगा प्रसाद विमल, मलयज, रणजीत सक्सेना, ऋतुराज, देवेन्द्र कुमार, विनोद कुमार शुक्ल, वेणुगोपाल, आलोकधन्वा, उदय प्रकाश, मंगलेश डबराल, अरुण कमल आदि प्रसिद्ध है।

नवें दशक की हिंदी कविता

नवें दशक की कविताओं में सहज सामाजिक सरोकार और आदमीयता की तलाश की प्रवृत्ति मिलती है। आठवें दशक की कविताओं में काव्य की जो मूलभूत सम्भावनाएँ मिलती है वह किसी न किसी रूप में अपनी समग्र परिकल्पनाओं के साथ आम आदमी की जिन्दगी से जुड़कर नवें दशक में प्रकट होती है। इस प्रकार आठवें दशक से लेकर नवें दशक तक की कविताओं पर दृष्टि डाले तो पता चलते हैं कि उसमें क्षोभ, असन्तोष, पीड़ा, निराशा, अनास्था, अविश्वास, स्वार्थ, हिंसा आदि के अलावा सृजन के प्रति निष्ठा और ईमानदारी का स्वर प्रमुख है। इन कविताओं में परिवेशगत विसंगतियों से जूझने के साथ-साथ आम आदमी की जिन्दगी से सीधा साक्षात्कार करने का प्रयत्न भी मिलता है। इस प्रकार समाजगत और व्यक्तिगत जीवन को वर्तमान से उभारने की प्रवृत्ति नवें दशक की कविता की एक खास विशेषता है। कविताओं में व्यंग्यात्मकता की गुंजाइश भी नवें दशक में उभरकर आई जो विशेष रूप से आठवें दशक की कविताओं में शुरू हुई थी। व्यंग्य के तीखे प्रहार से व्यक्ति, समाज और राजनीति, कुछ बच नहीं पाया। इन सभी स्तरों पर व्यंग्य की मार अत्यधिक सशक्त और प्रहारात्मक रूप में होती दिखाई पड़ती है। कवियों ने अपनी कविताओं में प्रखर सामाजिक चेतना के साथ-साथ शोषण, गरीबी, राजनीति तथा आर्थिक विषमताओं पर तीखा प्रहार किया।

इस प्रकार अनुभूति और अभिव्यक्ति की दृष्टि से नवें दशक की कविताओं में व्यापक परिवर्तन मिलता है। इस बात को स्पष्ट करते हुए डॉ. यतीन्द्र तिवारी का कथन है "नवें दशक की कविता का विचार और संवेदन दोनों सामाजिक सशक्ति से बड़ा गहराई के साथ जुड़ा हुआ है। यह इस दशक की विशेषता है कि भिन्न चार पीढ़ियों के रचनाकारों का सृजनात्मक केन्द्रीय स्वर एक ही जैसा है जो समाज के विभिन्न स्तरों पर समकालीन संवेदनाओं से गहरा लगाव रखता है। इन

कविताओं के तेवर अस्वीकार और निषेध तक ही सीमित न रहकर रचनात्मक और आक्रात्मक है जो समाज की जड़ हो रही आत्मा को स्पन्दित करने में अहम् भूमिका निभाने में समर्थ है। इन कविताओं में भ्रष्ट सामाजिक परिवेश के प्रति आक्रोश व्यक्तिगत स्तर पर व्यक्त न होकर सामाजिक स्तर पर समान दृष्टि से उभरा है"[13] इन कवियों में वर्तमान परिवेश में उपस्थित सामाजिक एवं राजनैतिक अन्तर्विरोधों को समझने, परखने और संघर्ष करने का स्वर प्रमुख है। इन कवियों की श्रेणी में नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, गिरिजाकुमार माथुर, रघुवीर सहाय, डॉ. विश्वंभर नाथ उपाध्याय, कुंवर नारायण, चन्द्रकान्त देवताले, रामदरश मिश्र, केदारनाथ सिंह, बलदेव वंशी, नरेन्द्र मोहन, नचिकेता, रमेश गौड, वेणुगोपाल, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, मंगलेश डबराल, प्रयाग शुक्ल, अरुण कमल, कुमार विकल, गोरख पाण्डेय, ऋतुरात, मलयज, आलोकधन्वा, उदय प्रकाश, विनोद भारद्वाज, मधुसूदन आदि उल्लेखनीय है।

यदि हम हिन्दी कविता के पिछले युगों पर नजर डाले तो समझ सकते हैं कि व्यंग्य कविता लिखने की जो परम्परा संत कवि कबीरदास से ही शुरू हुई थी, वह आगे चलकर भारतेन्दु, निराला, केशव चन्द्र वर्मा, प्रभाकर माचवे, सुरेन्द्र तिवारी, नागार्जुन, भारत भूषण अग्रवाल, रामावतार चेतना, मनोज सोनकर, श्याम सुनदर घोष, दिनकर सोनवालकर, विनोद गोदरे, मालिराम शर्मा जैसे अनेक कवि व्यंग्य कवियों के रूप में प्रसिद्ध है। स्वातन्त्र्योत्तर काल में, विशेषकर सन् 1960 में लिखी गई व्यंग्य कविताएँ समाज की उन सारी स्थितियों पर प्रहार करती हैं, जहाँ व्यंग्य के सिवा और कुछ नहीं काम कर सकता।

आठवें और नवें दशक में हिन्दी में व्यंग्य कवियों की एक लम्बी परम्परा दिखाई पड़ती है। मधुप पाण्डेय, प्रदीप चौबे, अशोक चक्रधर, सूर्यभानूगुप्त, सूर्यकुमार पाण्डेय, हरि जोशी, सुरेश उपाध्याय, घनश्याम अग्रवाल, सरोजिनी प्रीतम, निशिकांत, आशाकरण अटल, श्याम सुन्दर घोष, रवीन्द्र राजहंस, सुरेन्द्र दूबे, पदमेश चक्रवर्ती बालेन्दु शेखर तिवारी, रामेश्वर वैष्णव, महेश अग्रवाल, ऋषि गौड, चन्द्रकुमार असारी, ललित नारायण उपाध्याय, चक्रधर शुक्ल, मिश्रिलाल जायसवाल, मदन पाण्डेय, अशोक अंजुम, दिनेश रस्तोगी, आनन्द दिवान, काशीपुरी कुन्दन, गिरिराज शरण अग्रवाल, दिनकर सोनवालकर, राकेश शराद, सरोज कुमार, गोविन्द व्यास आदि अनेक आते हैं।

[13] **डॉ. यतींद्र तिवारी - नवें दशक की हिंदी कविता - पृ. 36-37**

उपर्युक्त व्यंग्य कवियों की अपेक्षा समकालीन हिन्दी कवियों में कुछ ऐसे कवि भी हैं, जो व्यंग्य कवि की संज्ञा से प्रसिद्ध नहीं हुए। फिर भी अपनी कविताओं में व्यंग्य की प्रवृत्ति को अपनाकर इसके माध्यम से आज के बिगड़ते हुए सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक आदि क्षेत्रों पर फैली असंगतियों, कुरीतियों, दुराचारों, अव्यवस्थाओं पर करारी चोट करते रहते हैं। ऐसे अनेक कवि समकालीन हिन्दी कविता-क्षेत्र में विद्यमान हैं। इनमें कवि श्रीकान्त वर्मा, चन्द्रकान्त देवताले, लीलाधर जगूडी, मंगलेश डबराल, कुंवर नारायण, केदारनाथ सिंह, अलोकधन्वा, उदय प्रकाश और वेणु गोपाल की कविताओं को प्रमुखता दी जा सकती है। हिन्दी व्यंग्य को एक नया तेवर, नया तेज, नई व्यापकता और नई ऊँचाई प्रदान करने में इनकी कविताएँ भी सहायक हैं क्योंकि आज के परिवेश में व्यंग्य पूरी शक्ति से अपनी ओर ध्यान आकृष्ट कर रहा है।

इक्कीसवीं सदी में हिंदी कविता

इक्कीसवीं सदी में सभी क्षेत्रों में बदलाव आया है। इसका प्रभाव आज के कवियों पर होना स्वाभाविक है। विशेष रूप से इक्कीसवीं सदी की कविताओं में बदलते हुए युग के सन्दर्भों को अधोरेखित किया गया है। इसलिए इक्कीसवीं सदी के कवियों ने आम आदमी की अस्मिता, उनके सुख-दुःख, स्त्री की विवंचना, पारिवारिक रिश्तें, पति और पत्नी के बदलते रिश्ते, ग्रामीण जीवन के प्रति लगाव, महानगरीय जीवन में जीने की लालसा, साथ ही भय, आनंद आदि सभी स्थितियों को महत्व दिया है। विशेष रूप से इक्कीसवीं सदी का कवि आश्वस्त होकर भी जीवन के प्रति आशावादी है।

आज इक्कीसवीं सदी में मनुष्य ने सभी क्षेत्रों में प्रगति कर ली है। परंतु इस यांत्रिक युग में मानव मूल्यों का ह्रास हो रहा है। मनुष्य-मनुष्य से दूर होता जा रहा है। पारिवारिक और आपसी सम्बन्ध बिगड़ रहे हैं। प्रेम और ममता की जगह हिंसा, क्रोध और अनियती को बढ़ावा मिल रहा है। इसके संकेत आज की कविता में मिलते हैं। डॉ. रंजना राजदान कहती हैं, "इक्कीसवीं सदी में मानव-मूल्यों की गरिमा का क्षरण हो रहा है। रिश्तों की गर्माहट में कमी आ रही है। परिस्थितियों में कटुता भयावह रूप ले रही है। इसके साथ ही राजनीतिक छल-प्रपंच और दुष्चक्र में फँसा समाज और इस समाज में साँस लेता कवि स्वयं को ट्रेजड़ी के बीच घिरा पाता है लेकिन वह हथियार डाल देने में नहीं बल्कि संघर्ष करने में विश्वास

रखता है।"'[14] आज की कविता में मनुष्यों की खामोश अपेक्षाएँ भी ताकतवर हैं। कुमार अम्बुज की 'अपेक्षा' नामक कविता में अपेक्षाओं से बनता हुआ समाज दिखायी देता

कुमार अम्बुज कहते हैं-

"कभी-कभी एक सुख
दुख से भी करता है अपेक्षा
और ऐसा करते हुए वह दाँव पर लगा देता है अपना जीवन
यह एक रात आते हुए दिन से अपेक्षा करती हुई
धीरे से बीत जाती है।"[15]

इक्कीसवीं सदी में विज्ञापन और मॉडलिंग जगत को लेकर अनेक कविताएँ

लिखी जा रही हैं। विजयशंकर चतुर्वेदी की 'पृथ्वी के लिए तो रूको' संग्रह की 'विज्ञापन' कविता में अश्लील विज्ञापन का दुष्प्रभाव मानवीय जीवन पर दिखायी देता है। कवि कहते हैं,

"एक विज्ञापन हमारी आत्मा को काटते-काटते खुद को
काट देता है एक दिन
तब गढ़ लिया जाता है दूसरा विज्ञापन।"[16]

विशेष रूप से उनकी कविताओं में नकली और असभ्य विज्ञापन का पर्दाफाश है। विज्ञापन का सम्बन्ध भावनाओं से है। पुरुष द्वारा मर्दानगी के विज्ञापन को कवि ने असभ्य माना है-

"एक स्त्री करती है प्यार का विज्ञापन
हमारी कोमल भावनायें सहलाते हुए

---

[14] डॉ. रंजना राजदान, इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता और जमीनी जुड़ाव, पृ. 159
[15] कुमार अंबुज, अतिक्रमण (अपेक्षा), पृ. 17
[16] विजयशंकर चतुर्वेदी, पृथ्वी के लिए तो रुको (विज्ञापन), पृ. 58

एक पुरुष करता है मर्दानगी का विज्ञापन

हमारी हैवानियत उकसाते हुये।"[17]

आज की हिन्दी कविता में अपने समय का यथार्थ चित्रण हुआ है। कवियों ने भूमंडलीकरण सत्ता, बाजार आदि में आम आदमी की स्थितियों को परखने की में कोशिश की है।

मंगलेश डबराल की कविता में बाजारवाद की दूनिया में एक लड़की की स्थिति को व्यक्त किया गया है। साथ ही बाजारवाद की दूनिया को वे इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

"और यह जो आप आपाधापी और कलह जैसी देखते हैं

वह मनुष्यों की दुनिया की ही तरह है

चीजें आपस में लगातार एक मैत्रीपूर्ण युद्ध में उलझी होती हैं।"[18]

इस विषय पर डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल कहते है, "समकालीन कवियों का कविता के क्षेत्र में एक साथ सक्रिय हो उठना और उनकी नानाविध कविताओं का खुलापन, भाषा की ताजगी, रूप की विविधता और वस्तु जगत को पूर्वागृह रहित दृष्टि से परखने का साहस कविता में नये विचारों के आगमन का संकेत दे रहा है।"[19]

आज की कविता में नारी के बदलते संदर्भ भी आ रहे हैं। रमणिका गुप्ता, निर्मला पुतुल, लीलाधर जगूडी, चंद्रकांत देवताले, पवन करण आदि कवियों की कविताओं में नारी की स्थिति को महत्व दिया है। पवन करण की 'स्त्री मेरे भीतर' संग्रह की कविताएँ स्त्रियों के दुःख, अत्याचार, अपमान, अस्मिता आदि को चित्रित करती हैं। इस प्रकार पवन करण ने नारी को विभिन्न रूपों में देखा है। आज का कवि दलित एवं आदिवासी के भोगे हुए जीवन एवं पिछड़े हुए समाज के जीवन को भी महत्व दे रहा है। रमणिका गुप्ता, निर्मला पुतुल, ओमप्रकाश वाल्मीकि, ऋतुराज आदि कवियों ने पिछड़े

[17] **वही, पृ. 58**

[18] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है (बाज़ार), पृ. 58-59**

[19] **डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल, कविता की पड़ताल, पृ. 19**

हुए समाज के यथार्थ को महत्व दिया है। लीलाधर जगूड़ी का 'अब मूर्ख नहीं बनेंगे हम' ओमप्रकाश वाल्मीकि का 'अब और नहीं' संग्रह की कविताएँ सामाजिक शोषण के विभिन्न आयामों से टकराती हैं।

इसलिए ओमप्रकाश वाल्मीकि अतीत के दिनों के शोषकों की नीति का पर्दाफाश करते हैं-

"हजारों वर्ष का अँधेरा
छिपा बैठा है मेरी साँसों में
काँपता है दीये की लौ-सा
और तब्दील हो जाता है कविता में।"[20]

संक्षेप में इक्कीसवीं सदी में समय एवं परिस्थिति के अनुरूप कविताएँ लिखी जा रही हैं। उम्मीद और आशंका के बीच बनते-बिगड़ते सम्बन्ध, आम-आदमी का आश्वस्त भाव, स्त्री मन की छटपटाहट, जीवन मूल्यों का ह्रास, आदिवासी एवं दलित की स्थिति, ग्रामीण जीवन के प्रति लालसा एवं महानगरीय जीवन की आपाधापी आदि को आज की कविता महत्त्व दे रही है। शिल्प की दृष्टि से मुक्तछंद में कविताएँ लिखी जा रही हैं। सरल भाषा का प्रयोग आज की हिन्दी कविता की विशेषता मानी जा सकती है।

निष्कर्ष

कविता में आधुनिक चेतना का विकास भारतेन्दु काल से प्रारम्भ हुआ है, और वह आगे अन्य सोपानों से गुजरता हुआ, अनेक नामों को स्वीकार करता हुआ, अनेक वेश धारण करता हुआ आज भी साधारण जन जीवन से जुड़कर उनके परिवेशगत विसंगतियों का यथार्थ चित्रण कर रहा है। प्रत्येक युग और परिवेश से जुड़कर आगे की ओर अग्रसर होने के कारण कविता कालयात्री रही है। इसलिए किसी प्रत्येक युग में समकालीन रहनेवाली कविता समय बीतने के साथ-साथ शाश्वत बन जाती है। समकालीन और शाश्वत परस्पर सम्बन्धित रहने वाली विशेषताएँ हैं। इसलिए समकालीन शब्द

---

[20] **वाल्मीकि ओमप्रकाश, अब और नहीं (किष्किंधा), पृ. 22**

किसी काल विशेष से बँधा हुआ रूप नहीं माना जा सकता है। प्रत्येक दशक में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक परिवेश में उपस्थित अनेक अन्तर्विरोधों, अन्तर्द्वन्द्वों, विसंगतियों, विषमताओं एवं विडम्बनाओं का वीभत्स रूप खुलकर पाठकों के सामने प्रस्तुत होता रहता है। इस प्रकार समकालीन कवि व्यंग्य के माध्यम से जन मानस में नई क्रान्ति और नव जागरण की स्थिति पैदा करके उन्हें सोचने और बदलने तथा सामाजिक भलाई के लिए काम करने को विवश करते हैं। आज के कवि इन बातों में सजग रहते हैं कि वे क्यों लिखते है, किसलिए लिखते हैं और किस के लिए लिखते हैं। आज कवि केवल अपनी अनुभूति और अभिव्यक्ति की सक्षमता से सन्तुष्ट नहीं है, बल्कि वे अपने कवि कर्म को सोद्देश्यता से अर्थपरक अभिव्यक्ति देकर, जनमानस को जागृत करके उसे क्रियाशील बनाने में सजग रहते हैं।

आधार ग्रंथ

1) चतुर्वेदी विजयशंकर, पृथ्वी के लिए तो रुको, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण 2009
2) डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2004
3) वाल्मीकि ओमप्रकाश, अब और नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण 2001

संदर्भ ग्रंथ

1) गुप्त जगदीश, नयी कविता - स्वरूप और समस्याएं, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, संस्करण 1968
2) गोविन्द रजनीश, 'समकालीन हिन्दी कविता की संवेदना, प्रकाशनघर, संस्करण 1992
3) गुप्त (डॉ.) ज्ञान चंन्द्र, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1974
4) सिंह (डॉ.) वीरेन्द्र, साहित्य और साहित्येतर संवाद सूत्र, रचना प्रकाशन - जयपुर, संस्करण 1999 [इपुस्तकालय]
5) शर्मा रमेश चंन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, विद्या प्रकाशन, संस्करण 2018
6) अरोड़ा (डॉ.) ललिता अरोड़ा, नई कविता का अनुशीलन, भारतीय ग्रंथ निकेतन - नई दिल्ली, संस्करण 1993
7) तिवारी (डॉ.) यतींद्र - नवें दशक की हिंदी कविता, सरस्वती प्रकाशन, सरस्वती प्रकाशन, संस्करण 1993

8) राजदान (डॉ.) रंजना, इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता और जमीनी जुड़ाव, भारत भारती - दिल्ली, संस्करण 2010

9) कुमार अंबुज, अतिक्रमण (अपेक्षा), राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण 2019

पत्रिका

1) मिश्र रामदरश, आजकल, अंक- 22

2) मिश्र अनंत तिवारी, आठवें दशक की कविता, दस्तावेज़, अंक - 13-14

द्वितीय अध्याय

मंगलेश डबराल की काव्य यात्रा पर विभिन्न आंदोलनों का प्रभाव

किसी भी युग का साहित्य और साहित्यकार तद्युगीन परिस्थितियों और परिवेश में से ही अपने अनुभूत की अभिव्यक्ति के धरातल खोजता है। तद्युगीन जीवन ही समग्र रूप से कवि की अनुभूति की काव्यात्मक अभिव्यक्ति का मूलाधार होता है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में राष्ट्रीय स्तर पर अनेक राजनैतिक, सामाजार्थिक और सांस्कृतिक-साहित्यिक परिवर्तन बड़ी तीव्र गति से हुए। इसके अतिरिक्त द्वितीय समरोत्तर विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। संचार-साधनों तथा सम्प्रेषण की नवीनतम तकनीक के विकास का परिणाम यह हुआ कि अब भौगोलिक दूरी और सीमाओं के दायरों का कोई अर्थ नहीं रह गया था। इसी कारण दार्शनिक और वैचारिक स्तर पर भी कोई दर्शन किसी देश की विशेष धरोहर न होकर समस्त विश्व की सम्पदा बनने लगा। इस दृष्टि से द्वितीय महायुद्धोत्तर विश्व-व्यवस्था तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय जनजीवन पर इन परिवर्तनों का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक गहन और सर्वव्यापी रहा है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य आंदोलनों में अधिकांश कवियों ने इन युगीन प्रभावों से सीधा साक्षात्कार किया है। इन्हीं परिस्थितियों को देखते हुए और कवि मंगलेश डबराल की कविताओं को परखते हुए उनकी चेतना-शक्ति पर जो व्यापक प्रभाव पड़ा है और जो उनकी कविताओं में परिलक्षित हुआ है उसी का विवेचन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

मार्क्सवादी प्रभाव

सामाजिक, राजनीतिक दर्शन में मार्क्सवाद उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व द्वारा वर्गविहीन समाज की स्थापना के संकल्प की साम्यवादी विचारधारा है।

"मार्क्सवाद उन आर्थिक राजनीतिक और आर्थिक सिद्धातों का समुच्चय है जिन्हें उन्नीसवीं-बीसवीं सदी में कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स और व्लादिमिर लेनिन तथा साथी विचारकों ने समाजवाद के वैज्ञानिक आधार की पुष्टि के लिए प्रस्तुत किया।"[21]

मार्क्सवाद एक ऐसी विचारधारा है जो राजनीति और समाज दोनों किनारों के बीच बहती है। मार्क्सवाद ने दुनिया भर के युवकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। कार्ल मार्क्स के अनुसार समाज व्यक्तियों से नहीं बना होता बल्कि खुद को अंतर संबंधों के योग के रूप में दर्शाता है, वो संबंध जिनके बीच में व्यक्ति खड़ा होता है।

माओत्से तुंग ने भी कहा है - Communism is not lone, communism is shammer which we use to crush the enemy" शोषकों तथा पूंजीपतियों के ख़िलाफ़ समझौता रहित संग्राम करने का आह्वान यहाँ मिलता है। सर्वहारा वर्ग में नयी उम्मीदें फूट पड़ने लगी। इसलिए साम्यवाद की जड़े सभी क्षेत्रों में मजबूत होने लगी। साहित्य भी इसके लिए अपवाद नहीं रहा।

मंगलेश पर मार्क्सवादी विचारों का प्रभाव देखा जा सकता है। उनकी कविताओं में राजनीतिक काव्य और समाज संबंधी काव्य विचारों से मार्क्सवादी होने के कारण उनकी कविताओं में शोषण, दमन और अत्याचारों का विरोध किया है। साथ ही साथ शोषितों के प्रति सहानुभूति प्रकट हुई है।

मंगलेश डबराल की कई कविताओं में मार्क्सवादी विचारों के प्रमाण मिलते हैं जैसे

"यह एक तस्वीर है
जिसमें थोड़ा-सा साहस झलकता है
और ग़रीबी ढँकी हुई दिखाई देती है
उजाले में खिंची इस तस्वीर के पीछे

[21] **गाबा ओमप्रकाश, राजनीति सिद्धांत की रूपरेखा, पृष्ठ 343**

इसका अँधेरा छिपा हुआ है।"[22]

(1990-93)

इन पंक्तियों में कवि मंगलेश डबराल कहते हैं कि हमारे देश में आम आदमी की स्थिति उतनी सुखद, अच्छी नहीं है। यहाँ ग़रीबी और यातना के बीच लोग जूझ रहे हैं। दर्द से भरे हुए समाज की पीड़ा और आसुँओं को उन्होंने क़रीब से देखा और पहचाना है। उनकी क्रांति चेतना से भरी हुई कविताएँ मनुष्य को सोचने पर मजबूर करती है। उनकी कविताओं में मानवीय समानता और मनुष्यता की सशक्त भावना है।

कवि ने शोषित एवं शोषक वर्ग का बड़ा ही कारुणिक चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया है। 'पहाड़ पर लालटेन' काव्य-संग्रह इसका जीता-जागता उदाहरण है। मंगलेश डबराल शोषित-पीड़ित व्यक्ति की व्यथा अपनी कविता में प्रकट करते हैं। कवि मंगलेश चाहते हैं कि देश की उन्नति के लिए शोषण का खुलकर विरोध करना चाहिए।

उन्होंने लालटेन के माध्यम से लोगों के मन में मुक्ति के संघर्ष का बीज बोना चाहा। वे लालटेन के प्रकाश से शोषण रूपी गहन अंधकार को नष्ट कर देना चाहते है। कवि बताते है कि एक वक्त की रोटी जुटाने के लिए स्त्रियाँ अपने कीमती गहनों को भी गिरवी रख देती हैं। घर में अन्य जो बुजुर्ग सदस्य हैं वे अपने खेतों को भी गिरवी रख देते हैं। कवि का शोषितों के प्रति सहानुभूति एवं शोषक वर्ग के प्रति आक्रोश उनके मार्क्सवादी होने की तरफ संकेत करता है। शोषित व्यक्ति की पीड़ा को कवि अपनी कविता के माध्यम से अभिव्यक्ति देते हुए लिखते हैं-

"दूर एक लालटेन जलती है पहाड़ पर
एक तेज आँख की तरह
टिमटिमाती धीरे-धीरे आग बनती
देखो अपने गिरवी रखे हुए खेत
बिलखती स्त्रियों के उतारे गये गहने
देखो भूख

[22] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, अपनी तस्वीरें, पृष्ठ 28**

से बाढ़ से महामारी से मरे हुए

सारे लोग उभर आये हैं चट्टानों से।"[23]

शासक वर्ग के द्वारा किए गए अत्याचारों का ब-ख़ूबी वर्णन मंगलेश अपनी कविता 'क्रेमलिन कथा' में भी करते हैं। कवि यहाँ उन कलाकारों पर हुए अत्याचारों को दर्शा रहे है कि सुन्दर-सुन्दर भवनों, किलों का निर्माण करने वाले उन कारीगरों के हाथों को वे क्रूर शासक कटवा देते थें ताकि इतनी सुन्दर कला वे कहीं और विकसित ना कर सके।

शासक वर्ग की क्रूरता का प्रदर्शन करती कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य है-

"इनके कलाकारों-कारीगरों के हाथ काट दिये गए थे

ताकि कहीं और अवतरित न हो सके ऐसी कला

हमारे ताजमहल के बारे में कहा जाता है यह सब

शासकों के क्रूर खेल किसी भी युग में नहीं बदलते

वे छीनते ही आये हैं कलाकारों से उनकी कला उनका जीवन।"[24]

इन पंक्तियों पर आलोचक रविभूषण अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते है कि "शासक शब्द से, भाषा और विचार से ही नहीं, रंगों और रेखाओं से, चित्रों और मूर्तियों से भी भय खाता है…"[25]

मार्क्सवाद मानव सभ्यता और समाज को हमेशा से दो वर्गों- शोषक और शोषित में विभाजित मानता है। माना जाता है साधन सम्पन्न वर्ग हमेशा से उत्पादन के संसाधनों पर अपना अधिकार रखने की कोशिश की तथा बुर्जुआ विचारधारा की आड़ में एक वर्ग को लगातार वंचित बनाकर रखा । शोषित वर्ग को इस षड्यन्त्र का भान होते ही वर्ग संघर्ष की

[23] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, पहाड़ पर लालटेन, पृष्ठ 65**

[24] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, क्रेमलिन कथा, पृष्ठ 41**

[25] **आलोचक रविभूषण से बातचीत के दौरान**

जमीन तैयार हो जाती है। वर्गहीन समाज (साम्यवाद) की स्थापना के लिए वर्ग-संघर्ष एक अनिवार्य और निवाराणात्मक प्रक्रिया है ।[26]

ग़रीबी और यातना के बीच कविता में जब भी सामाजिक सरोकार आयेंगे तो स्वीकार बोध अपराध बोध ही होगा। पर कविता में ऐसा स्वीकार बोध उसे और भी संप्रेषणीय बनाएगा। वह स्वीकार बोध केवल मंगलेश डबराल का ही नहीं होगा बल्कि भारतीय सर्वहारा वर्ग का बोध होगा। जैसे-

"जोरों से नहीं बल्कि
बार-बार कहता था मैं अपनी बात
उसकी पूरी दुर्बलता के साथ
किसी उम्मीद में बतलाता था निराशाएँ
विश्वास व्यक्त करता था बग़ैर आत्मविश्वास
लिखता और काटता जाता था यह वाक्य
कि चीजें अपने सबसे बुरे दौर से गुज़र रही हैं।"[27]
(1994)

मंगलेश डबराल जब दिल्ली आए तो उन्होंने थोड़ा बहुत मार्क्सवाद का अध्ययन किया। उस वक्त उनके अनेक मित्र बने जो वामपंथी थें, और उस समय के क्रांतिकारी मार्क्सवादी लेनिनवादी आंदोलन से जुड़े थे।[28] अगर हम उनकी 'मुक्ति' कविता को देखें तो उसमें यही भाव उभर कर आता है।

मंगलेश डबराल ने जिस समाज को देखा है उसी समाज के विभिन्न वर्गों को अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। उच्च वर्ग के जमींदार व नेतागण जो शोषक हैं, अनेकों प्रकार से मजबूर व लाचार लोगों का शोषण करते हैं। कवि हमें बताना चाहते हैं कि एक अत्याचारी वर्ग किस प्रकार लोगों पर अत्याचार करता है और उसे अपने किए पर पछतावा न होकर

---

[26] **दर्शन कोश, प्रगति प्रकाशन, पृष्ठ 579**
[27] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, बार-बार कहता था, पृष्ठ 18**
[28] **आलोचक रविभूषण से साक्षात्कार के दौरान प्राप्त जानकारी**

वह अपनी विजय की गाथाएँ बच्चों को सुनाता है। लोगों पर अत्याचार करने के कारण जो थकावट वो अनुभव करते हैं उसको वे छोटे-छोटे बच्चों के पास जाकर, उनके साथ खेलकर, उन्हें अपनी वीरता की कहानी सुनाकर दूर करते हैं-

"अत्याचार करने के बाद

अत्याचारी निगाह डालते हैं बच्चों पर

उठा लेते हैं उन्हें गोद में

अपने जीतने की कथा सुनाते हैं।

xxxxxxxx

बच्चों के पास आकर

थकान मिट जाती है उनकी

जो पैदा हुई थी करके अत्याचार।"[29]

कवि मंगलेश अत्याचारी शासक वर्ग के ख़िलाफ़ आक्रोश व्यक्त करते हैं। वे स्थितियों को बदलकर समाज में परिवर्तन लाना चाहते हैं। उन्होंने अपनी एक कविता 'तानाशाह कहता है' में एक ऐसे तानाशाह शासक का वर्णन किया है जो अमानवीयता, अत्याचार और निर्दयता को शाश्वत बनायें रखना चाहता है। वह लोकतंत्र का विरोध करता है। वह अपनी तानाशाही के बल पर अपने दुख को सर्वोपरि समझता हुआ कहता है-

"तानाशाह कहता है

धैर्य रखो धैर्य बड़ी चीज़ है

अपने दुख के बारे में मत सोचो

और दुख होगा

मुझसे देखा नहीं जाता तुम्हारा दुख

देखो देखो कितना बड़ा है मेरा दुख

तानाशाह चाहता है

---

[29] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, अत्याचारियों की थकान, पृष्ठ 66**

तुम सिर्फ़ उसके दु:ख के बारे में सोचो।"

(1980)

मध्यवर्गीय लोगों की बेबसी, अभाव, जटिलता आदि के साथ-साथ पहाड़ी प्रदेशों में रहने वाले लोगों पर जो शोषण हो रहा है, उसका जीवंत चित्रण हमें कवि मंगलेश डबराल के साहित्य में देखने को मिलता है। जंगल में रहने वाली स्त्रियाँ लकड़ियाँ ढ़ो - ढोकर जीवन व्यतीत करती मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। भोजन के अभाव में बच्चें असमय मर जाते हैं। व्यापारी वर्ग उन असहाय, बेबस, लाचार और मजबूर लोगों को डराकर काम करवाते हैं। ऐसा शोषण आज चारों तरफ़ हो रहा है। शोषितों की आवाजें दूर-दूर तक सुनाई देती है। उनके सामने भूख के सिवाय कुछ भी नहीं है-

"धूप में तपती हुई चट्टानों के पीछे
वर्षों के आर्त्तनाद है
और थोड़ी सी घास है
बहुत प्राचीन
पानी में हिलती हुई
अगले मौसम के जबड़े तक पहुँचते पेड़
रातों रात नंगे होते हैं
xxxxxxxxx
चूल्हों के पास पारिवारिक अंधकार में
बिखरे हैं तुम्हारे लाचार शब्द
अकाल में बटोरे गये दानों जैसे शब्द"

मंगलेश डबराल शोषण और अन्याय से ऊपर उठकर नये मानव को जीवन देने की चेष्टा करते हैं। वे अपनी कविता के माध्यम से स्वस्थ और सुंदर जीवन का भोग करने का आह्वान करते हैं। पद्मश्री बाबू लाल दहिया कविता के विषय में कहते हैं कि कविता चाहे जिस छंद में हो किन्तु शोषित और पीड़ित के पक्ष में होनी चाहिए। उसकी शैली चाहे जो हो। कविता की सार्थकता तभी कही जा सकती है।

इस कथन के संदर्भ में कवि मंगलेश की कविताओं का अध्ययन करते हैं तो हम पाते हैं कि उनकी कविताएँ शोषित और पीड़ित के पक्ष में होने के कारण अत्यन्त सार्थक हो गई हैं।

मंगलेश डबराल ने जनजीवन की दशा को अच्छी तरह महसूस करके उसको भली-भांति समझकर चित्रित किया है। वे कहते हैं कि प्रकृति हम सभी को एक समान समझकर सभी को एक जैसी वस्तुएँ प्रदान करती है लेकिन कुछ मनुष्य स्वयं को शक्तिशाली मानते हुए सभी साधनों का केवल अपने हित में प्रयोग करना चाहते हैं। इसी बात को पुष्ट करती उनकी एक कविता 'शानदार बगीचा' है जिसमें कवि ने एक फूल के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि फूलों की ख़ुशबू सभी को प्रिय लगती है लेकिन एक फूल को सूंघकर अर्थात् बलशाली बनकर व्यक्ति स्वयं को बादशाह समझने लगता है और दूसरे फूल अर्थात् ग़रीब वर्ग को अपने पैरों के नीचे कुचल देता है। इसी बात को स्पष्ट करती पंक्तियाँ द्रष्टव्य है-

"फूल सबके लिए खिले हैं
हवा सबके लिए बहती है
सबको प्रिय है फूलो के बीच चलना रूकना दौड़ना
देर तक देखना फूलों के साथ हवा के खेल
मैं एक फूल तोड़कर सूंघता हूँ
और एक बादशाह की तस्वीर में बदल जाता हूँ
एक फूल मेरे पैर के नीचे आकर कुचल जाता है
तब मैं दिखता हूँ एक ग़रीब की सूरत
जिसे बादशाह के बगीचे में टहलने की मनाही है
अनंत काल से।"[30]
(1996)

[30] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, शानदार बग़ीचा,पृष्ठ 74**

मंगलेश डबराल शासक वर्ग की क्रूरता के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाते हैं। वे परिस्थितियों में बदलाव लाना चाहते हैं जो कि संघर्ष एवं विरोध के बिना असंभव है। लेकिन वर्गीय सीमाओं के चलते संघर्षकारी ताकतों से जुड़ने के गतिरोध को वे तोड़ना भी नहीं चाहते। यही कारण है कि कवि के लिए शासक वर्ग की क्रूरता के विरुद्ध 'मेरी घृणा बची हुई है यह काफ़ी है' जैसी भावना कवि अपनी कविता में प्रकट करते है-

"कुछ देर मैंने अन्याय का विरोध किया
फिर उसे सहने की ताक़त जुटाता रहा
मैंने सोचा मैं इन शब्दों को नहीं लिखूँगा
जिनमें मेरी आत्मा नहीं है जो आततायियों के हैं
और जिनसे ख़ून जैसा टपकता है
कुछ देर मैं एक छोटे से गड्ढे में गिरा रहा
यही मेरा मानवीय पतन था
मैंने देखा मैं बचा हुआ हूं और सांस
ले रहा हूं और मैं क्रूरता नहीं करता
बल्कि जो निर्भय होकर क्रूरता किये जाते हैं
उनके विरुद्ध मेरी घृणा बची हुई हैं यह काफ़ी है।"[31]
(1992)

इस प्रकार मंगलेश डबराल अपनी कई कविताओं के माध्यम से शोषक एवं शोषित वर्गों का विरोध करते हुए नज़र आते है जिससे मार्क्सवाद का प्रभाव उनपर स्पष्ट रुप से देखा जा सकता है। खुद मंगलेश स्वीकारते हैं कि "मैं अपनी कविता को मार्क्सवाद से ही अनुप्रेरित मानता हूँ। कविता हालांकि मार्क्सवादी दर्शन का न तो विस्तार करती है, और न व्याख्या करती है। वह अपने लिए मार्क्सवाद को ईजाद करती रहती है।... मेरी कविताओं का कथ्य हमेशा शोषित, उत्पीड़ित

[31] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, कुछ देर के लिए, पृष्ठ 11-12**

और निम्नवर्गीय अवस्थिति रहा है - चाहे वह 'मोहन थपालियाल' या 'गुणानंद पथिक' पर हो या 'अमीर खां' और 'केशव अनुरागी' पर, वह 'घर का रास्ता' हो या 'पहाड़ पर लालटेन'।"[32]

नक्सलवादी प्रभाव

नक्सलवाद कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के उस आंदोलन का अनौपचारिक नाम है जो भारतीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ। नक्सल शब्द की उत्पत्ति पश्चिम बंगाल के छोटे से गाँव नक्सलबाड़ी से हुई है। जहाँ भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेता चारू मजूमदार और कानू सान्याल ने 1967 में सत्ता के ख़िलाफ़ एक सशस्त्र आंदोलन की शुरूआत की। नक्सली आंदोलन के नेता मजूमदार और सान्याल चीन के कम्युनिस्ट नेता माओत्से तुंग, जिसे माओ जेडॉन्ग भी कहा जाता है उससे सबसे ज्यादा प्रभावित थे। ये उसी के सिद्धांत को लेकर आगे बढ़े। इसीलिए हम नक्सलवाद को माओवाद भी कहते हैं। इसका सिद्धांत था कि सरकार के ख़िलाफ़ सीधी लड़ाई संभव नहीं है, इसीलिए मनोवैज्ञानिक तौर पर इसे लड़ा जाना चाहिए। इसमें सरकार नहीं बल्कि उसकी इच्छाशक्ति पर आक्रमण की बात कही गई है।

1967 में नक्सलवादियों ने कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों की एक अखिल भारतीय समन्वय समिति बनाई। इन विद्रोहियों ने औपचारिक तौर पर स्वयं को भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से अलग कर लिया और सरकार के ख़िलाफ़ भूमिगत होकर सशस्त्र लड़ाई छेड़ दी। 1971 के आंतरिक विद्रोह और मजूमदार की मृत्यु के बाद यह आन्दोलन एकाधिक शाखाओं में विभक्त होकर कदाचित अपने लक्ष्य और विचारधारा से विचलित हो गया।

आज कई नक्सली संगठन वैधानिक रूप से स्वीकृत राजनीतिक पार्टी बन गये हैं और संसदीय चुनावों में भाग भी लेते हैं लेकिन बहुत से संगठन अब भी छद्म लड़ाई में लगे हुए हैं। कवि मंगलेश डबराल भी नक्सलवादी भावना से प्रभावित है।

हिंदी में नक्सलवाद से प्रेरित कविताएं लिखने के लिए नागार्जुन, त्रिलोचन, रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जैसे प्रसिद्ध कवियों के साथ मंगलेश डबराल, वीरेन डंगवाल, कुमार विकल, दिनेश कुमार शुक्ल, पंकज सिंह आदि

[32] **मंगलेश डबराल के साथ ओम निश्चल की बातचीत, साक्षात्कार, अगस्त 2004**

कवियों ने हिंदी कविता की नक्सल परंपरा की अजस्र धारा को जिंदा रखा है। इस क्रम में उसका फलक विस्तृत हुआ है और पर्यावरण, बेदखली, जाति उत्पीड़न, स्त्री मुक्ति जैसे अन्य सरोकार भी उसकी सीमा में दाखिल हुए हैं।

नक्सलवाद का अधिक चित्रण तो हमें मंगलेश डबराल के काव्य में देखने को नहीं मिलता लेकिन जितना भी संक्षिप्त रूप से वर्णन हमें मिलता है उससे यह जरूर स्पष्ट हो जाता है कि वे नक्सलवाद से प्रेरित है। उनकी 'मुक्ति' शीर्षक से लिखी गयी कविता नक्सलवाद का सम्पूर्ण चित्र हमारे सामने प्रस्तुत कर देती है-

"पीठों पर घाव और कंधों पर हथियार लिए हुए
लोगों की आहटें और नज़दीक हो गयी है
उनके कांपते सर और सूराखदार सीने
धीरे-धीरे पैतृक विलाप से बाहर आ रहे हैं
कच्ची मिट्टी से सने उनकी उंगलियों के पोर
सनसनाते हैं ख़ून की लकीरों जैसी
उनके हाथ की रेखाएं चमकती हैं
उठी हुई कुहनियों से मीलों स्तब्ध हवा कांपती
उनकी धमनियों में गूंजती भूख
खोजती है अपना गुस्सा और अपना प्रेम
उनके रोओं से उड़ती है बारूद ।"[33]

इस कविता में कवि ने शोषित, पीड़ित जन-मन में जागी संघर्ष-चेतना का चित्र खींचा है। शोषण से मुक्ति पाने के लिए एकजुट होकर लड़ना चाहिए। अब उनके मन में मृत्यु का भय नहीं है। कवि मंगलेश कहते हैं कि डर के मारे सारे चुपचाप अपने-अपने घर पर ही बैठे रहेंगे तो पीढ़ी-दर-पीढ़ी को शोषण के इस भार को ढोना होगा। अगर वे संघर्ष करेंगे तभी उनको इस पीड़ा से मुक्ति मिल सकेगी -

---

[33] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, मुक्ति, पृष्ठ 69**

"घाटियों और चरागाहों में फड़फड़ाते हुए

वे लगातार आ रहे हैं अन्याय को

फिर से अपने रक्त और मांस में पकड़ने के लिए

सुनसान और अवैध रास्तों से गुजरते हुए

वे सुनते हैं सुदूर जेलों में बजती

मृत्यु की सूचना देती बेड़ियां

और अजन्मे बच्चों के नाम पेड़ों पर गोदते हैं - मुक्ति।"[34]

मंगलेश डबराल के पीढ़ी के प्रतिभाशाली लोगों की पूरी जमात किसी न किसी रूप से नक्सलवादी आन्दोलन से जुड़ी थी। 'पहाड़ पर लालटेन' कविता में भी कवि ने पहाड़ी क्षेत्रों में दरिद्रता में जीवन व्यतीत करने वाले लोगों का चित्रण करते हुए बताया है कि किस प्रकार वहाँ का व्यक्ति लकड़ियाँ बेचकर निर्वाह कर रहा है। भूख, बाढ़ और महामारी ने उनको अपने शिकंजे में कस रखा है। लालटेन को कवि ने एक चेतना, जागृति के रूप में दर्शाया है। सदियों से दबी हुई इच्छाएँ जागृत होकर अपने अधिकारों को प्राप्त करने का संघर्ष कर रही है जो धीरे-धीरे नक्सलवाद के रूप में सामने आता है। जैसे-

"दूर एक लालटेन जलती है पहाड़ पर

एक तेज आंख की तरह

टिमटिमाती धीरे-धीरे आग बनती हुई

देखो अपने गिरवी रखे हुए खेत

बिलखतीं स्त्रियों के उतारे गये गहने

देखो भूख से बाढ़ से महामारी से मरे हुए

सारे लोग उभर आये हैं चट्टानों से

दोनों हाथों से बेशुमार बर्फ़ झाड़कर

[34] **वही, पृष्ठ 70**

अपनी भूख को देखो

जो एक मुस्तैद पंजे में बदल रही है

जंगल से लगातार एक दहाड़ आ रही है

और इच्छाएं दांत पैने कर रही हैं

पत्थरों पर।"[35]

शोषक वर्ग के प्रति आक्रोश एवं शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति व्यक्त करने वाले मार्क्सवादी विचारों ने कवि को काफ़ी हद तक प्रभावित किया है। उनके क़रीबी मित्र, आलोचक रविभूषण भी इस बात से सहमत है कि "मंगलेश पर नक्सलवादी आंदोलन का प्रभाव था।" उनके अनुसार उत्तराखंड जैसे पहाड़ी इलाके में बिहार और उत्तर प्रदेश की तरह इस आंदोलन का "तुरंत प्रभाव नही पड़ा और न वैसी सक्रियता थी पर मंगलेश ने पहाड़ पर लालटेन जला दी"[36]

मंगलेश डबराल के अंतिम दिनों में उनके पड़ोसी रहे प्रियदर्शन इस विषय में लिखते हैं कि "सत्तर और अस्सी के दशकों में नक्सल आंदोलन से प्रेरित-प्रभावित हिंदी कविता को उन्होंने 'पहाड़ पर लालटेन' जैसा अद्भुत संग्रह दिया और बताया कि बहुत तीखे क्रोध और विरोध को कैसे मार्मिक और मद्धिम आवाज़ में भी पूरी तीव्रता से व्यक्त किया जा सकता है"[37]

मंगलेश डबराल के मित्र सुधीश पचौरी अपने संस्मरण में उनके बारे में लिखते है कि "उसकी लाइन नक्सल वाली होने लगी थी लेकिन मेरे जाने वह किसी कम्यूनिस्ट पार्टी का बाजाप्ता सदस्य कभी न बना। वह अन्य बहुत से साहित्यकारों की तरह वामपंथी राजनीति का पक्षधर अवश्य रहा।"[38]

---

[35] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, पहाड़ पर लालटेन, पृष्ठ 65**

[36] **आलोचक रविभूषण से साक्षात्कार के दौरान प्राप्त जानकारी**

[37] **प्रियदर्शन, मंगलेश डबराल: राजनीतिक चेतना और मानवीय आभा से दीप्त कवि का जाना (लेख), बीबीसी हिंदी, bbc.com**

[38] **पचौरी सुधीश, 'मंगलेश को मंगलेश ही रहने दो देवत्व न दो' (संस्मरण), hindi.theprint.in**

डॉ. हाइंस वर्नर वेसलर मंगलेश डबराल की स्मृति में लिखते है कि "मंगलेशजी ने खुद को एक स्वतंत्र लेखक के रूप में सबसे पहले देखा, न कि किसी राजनीतिक दल के कार्यकर्ता में। वे मार्क्सवाद के साथ अस्तित्ववाद और प्रयोगवाद से प्रभावित थे। छायावाद की छवि भी मिलेगी इनकी रचनाओं में।"[39]

आपातकाल विरोधी आंदोलन का प्रभाव

26 जून 1975 से 21 मार्च 1977 तक 21 मास की अवधि में भारत में आपातकाल घोषित था। तत्कालीन राष्ट्रपति फ़खरूद्दीन अली अहमद ने तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के कहने पर भारतीय संविधान की धारा 352 के अधीन आपातकाल की घोषणा कर दी। स्वतन्त्र भारत के इतिहास में यह सबसे विवादास्पद और अलोकतांत्रिक काल था। आपातकाल में चुनाव स्थगित हो गए तथा नागरिक अधिकारों को समाप्त करके मनमानी की गई। जयप्रकाश नारायण ने इसे 'भारतीय इतिहास की सर्वाधिक काली अवधि' कहा था।

आपातकाल का यह समय इतिहास में सबसे ज़्यादा अलोकतांत्रिक काल था। सत्ताधारियों द्वारा दिये गये वचन आपातकाल की ज्वाला में जल कर भस्म हो गए और कुछ साल पूर्व यह भीड़ जिसकी जय-जयकार कर रही थी, उसी के विरोध में खड़ी हो गयी। हिन्दी साहित्य में आपातकाल-विरोधी कविताओं में हम स्थापित व्यवस्था के ख़िलाफ़ विद्रोह को देख सकते हैं। ऐसी कविताओं में हमारे कवियों ने अमानवीय अधिकार, सत्ता और भ्रष्ट राजनीति पर धावा बोला है। आपातकाल को भगाने के लिए हमारे कवि निरन्तर संघर्ष करते रहें। समकालीन कविता में आपातकाल के दौरान राजनीति और अर्थतंत्र ने मानव जीवन के आदर्शों की पोल खोल दी। नेताओं की कथनी और करनी में जो अंतर था वह जनता के सामने स्पष्ट हो गया। राजनीति और राजनीतिक नेताओं पर जितना कड़ा प्रहार समकालीन कविता में

[39] **वेसलर (डॉ.) हाइंस वर्नर, "मैदान में एक पहाड़ की आवाज अब भी गूंजती है मंगलेश डबराल", गर्भनाल (मासिक ई-पत्रिका)**

मिलता है वैसा वर्णन शायद ही पहले समकालीन कविता में हुआ हो। नागार्जुन ने तो इंदिरा गाँधी को 'हिटलर की नानी'[40] तक कह दिया है।

मंगलेश डबराल की कुछ कविताएँ भी आपातकाल के दौरान उपजी हुई हैं। वे अपनी कविताओं में तत्कालीन परिस्थितियों को प्रकट करते हैं। उन की 'गिरना' कविता का अध्ययन करने से पता चलता है कि इस कविता में एक प्रकार की दहशत के साथ-साथ चारों तरफ़ सन्नाटा भी फ़ैला हुआ है। वह सन्नाटा आपातकाल के दौरान ही उपजा हुआ है। जैसे -

"बर्फ़ के नीचे दबी है घास
चिड़िया और उनके घोंसले
और खंडहर और टूटे हुए चूल्हे
लोग बिना खाये जब सो जाते हैं
वह चुपचाप गिरती रहती है
बर्फ़ में जो भी पैर आगे बढ़ाता है
उस पर गिरती है बर्फ़
बर्फ़ गिर रही है चारों ओर आदि अंतहीन
रास्ते बंद हो रहे हैं
उस पार कोई चीख़ता है
बर्फ़ पर उसकी आवाज़ फैलतीं है
जैसे ख़ून की लकीर"[41]
(1976)

---

[40] **नागार्जुन, इसके लेखे संसद-फंसद सब फिजूल है (कविता), hindikavita.com**
[41] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, गिरना, पृष्ठ 14**

इन पंक्तियों में बर्फ़ 'जड़ता' की प्रतीक है। यह 'जड़ता' शासन और व्यवस्था की जड़ता का प्रतीक है। उस व्यवस्था और जड़ता के भीतर सम्पूर्ण समाज, सम्पूर्ण जीवन ही दब गया है। बर्फ़ के गिरने से घास, चिड़ियों के घोंसले सब नष्ट हो गये हैं। उसी प्रकार इस क्रूर व्यवस्था के कारण मनुष्य का जीवन भी नष्ट होता जा रहा है। सत्ताधारी वर्ग ने अपने वर्चस्व को बनाए रखने के लिए भारतीय जनता के सारे अधिकार छीन लिये थें। सत्ताधारी वर्ग के जो लोग लोकतंत्र के लिए ख़तरा उत्पन्न करते रहें, वही लोग संचार एवं अन्य माध्यमों द्वारा यह दुहराते हुए नहीं थकते कि लोकतंत्र तथा देश पर ख़तरा उत्पन्न हो गया है। ऐसे में लोकतंत्र को बनाए रखना कितना मुश्किल है। मौलिक अधिकारों से वंचित जनता न ही अपने विरोध को व्यक्त कर सकती थी और न ही सभा कर सकती थी, इसके साथ-साथ अखबारों पर सेंसर लागू कर दिया गया था। इस व्यवस्था का बेबाक चित्रण नरेन्द्र मोहन की कविता में भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। उनकी कविता का अंश द्रष्टव्य है-

"पड़ा हूँ / हड्डी थोड़ी हिली है / माँस थोड़ा फटा है
हिलने की मनाही है / बोलने की भी / माँस थोड़ा फटा है
रीढ़ की हड्डी की और कोई गाँठ / उठता है दर्द
नश्तर - सा काटता / फैलतीं है चीख
बेजान- बेआवाज़ / मरते हुए पक्षी की
सख़्त क्रूर चेहरों से / घिरा – घिरा
पड़ा हूँ / कराहता।"[42]

आपातकाल के कारण चारों तरफ़ दहशत और आतंक इस तरह फ़ैला हुआ था कि सारा संसार डर एवं भय के कारण बंद सा हो गया है। इसलिए मंगलेश डबराल लिखते हैं-

"यहाँ आते-जाते मैंने
शहर के बारे में सोचा
जो पालतू सूर्यास्त और सनसनीख़ेज़ ख़बरों से

[42] **सिंह गुरचरण सुमन पंडित (सं), नरेन्द्र मोहन रचनावली - 1, पृष्ठ 148**

लौट कर अपने मुखौटे छिपा रहा था

xxxxxxxx

यहाँ आते-जाते

मैंने दुनिया के बारे में सोचा

जो चारों ओर से बंद और डरी हुई थी

हमारे दिमाग़ों की तरह

नंगी पड़ी चीजों के बाहर और भीतर

ख़ामोशी थी किताबों में।"[43]

(1976)

आपातकालीन परिस्थितियों के दौरान शासन - तंत्र ने व्यक्ति के हँसने पर भी प्रतिबंध लगा दिया था। व्यवस्था द्वारा शोक-सभाओं का आयोजन पूर्ण औपचारिक तथा हास्यास्पद होता था। पुलिस का आतंक लोगों पर दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा था । इस व्यवस्था पर करारा प्रहार नरेन्द्र मोहन की कविता में भी देखते ही बनता है। जैसे-

"पता नहीं कैसे मेरी हँसी फूट पड़ी

भरी शोक-सभा में

गूँज उठीं... मैं पकड़ लिया गया, जकड़ लिया गया

न बम फेंका, न गोली चलाई

सिर्फ़ हँसा था और पकड़ लिया गया था।"[44]

इसी क्रम में रघुवीर सहाय का भी स्मरण हो आता है जिन्होंने हँसने से पूर्व जनता को सोचने एवं समझने की सलाह देते हुए लिखा है -

---

[43] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, आते-जाते, पृष्ठ 12**

[44] **सिंह गुरचरण सुमन पंडित (सं), नरेन्द्र मोहन रचनावली - 1, पृष्ठ 63**

"हँसो अपने पर न हँसना क्योंकि उसकी कड़वाहट पकड़ ली जाएगी

और तुम मारे जाओगे

ऐसे हँसो कि बहुत खुश न मालूम हो

वरना शक होगा कि यह शख़्स शर्म में शामिल नहीं

और मारे जाओगे"[45]

कवि मंगलेश की एक और कविता है 'सम्राज्ञी' जो स्थूल रूप से श्रीमती इन्दिरा गाँधी को लेकर लिखी थी। मंगलेश डबराल अपनी कविता में लिखते हैं कि इन्दिरा गाँधी एक सम्राज्ञी है जो इस आतंकवादी व्यवस्था को जन्म देने वाली है। वह अपने महल से बाहर निकलेगी और अपना हाथ हिलाकर सारी जनता को धन्य कर देगी। जैसे -

"सम्राज्ञी के बाहर आने में अब देर नहीं है

वह अभी आयेंगी

और अपना दुर्लभ हाथ हिलाकर

सबको धन्य कर देंगी।"[46]

(1975)

उस समय जनता और शासन एक-दूसरे से दूर हो चुके थे। चारों तरफ़ भय और हिंसा फैली हुई थी, जिसके कारण आम जनता के दिन आतंक में व्यतीत होते थे।

मंगलेश डबराल की एक और कविता 'तानाशाह कहता है' की पंक्तियां यहां पर उल्लेखनीय हैं -

"हमारे बिना तुम कुछ नहीं कर सकते

तानाशाह कहता है

तुम उठ नहीं सकते, सांस नहीं ले सकते

---

[45] **सहाय रघुवीर, हँसो हँसो जल्दी हँसो (कविता), kavitakosh.org**

[46] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, सम्राज्ञी, पृष्ठ 34**

कहीं आ-जा नहीं सकते

हम न हो तो तुम भी नहीं हो सकते।"[47]

(1980)

इन पंक्तियों में लोकतंत्र पर छाए खतरे को देखा जा सकता है। आलोचक रविभूषण इस कविता के विषय में कहते हैं - "मंगलेश की और अन्य कई हिंदी कवियों की 'तानाशाह' से संबंधित कविताएं एक विशेष काल-खंड में लिखी गई है।... मंगलेश की ये काव्य पंक्तियां लोकतंत्र की समाप्ति की ओर संकेत करती हैं... लोकतंत्र एकतंत्र में बदल रहा है। आपातकाल से पहले तानाशाह से संबंधित कविता शायद ही मिले।..."[48]

अतः स्पष्ट होता है कि मंगलेश डबराल ने आपातकालीन युग पर बड़ा ही तीखा प्रहार किया है। एक प्रकार से देखें तो व्यक्ति की हँसने-बोलने की स्वतन्त्रता छिन गई थी। देश में शासक वर्ग ने मानवीय स्वाधीनता एवं न्याय को अपदस्थ कर दिया था। उस समय प्रशासक तो अत्याचारी थे ही, साथ ही एक सामान्य कर्मचारी भी निष्ठा और समर्पण को दर्शाने के लिए घृणित कार्य कर रहे थें। निर्धन जनता असहाय और विवश थी। शासक वर्ग मनमानी कर रहा था। उस युग में अनेक विसंगतियाँ थी। मंगलेश डबराल की कविताएँ उस स्थिति का ज्वलंत परिचय देती हैं। जैसा कि उनकी 'सम्राज्ञी', 'गिरना' आदि कविताओं में स्पष्ट परिलक्षित होता है।

सांप्रदायिक समाज और धार्मिक आंदोलनों का प्रभाव

कवि मंगलेश डबराल समसामयिक संदर्भों को अपने साथ लेकर चलते हैं। उनकी कविता आज और इस क्षण के विचारों को व्यक्त करती है। उनकी कविता '6 दिसम्बर' में सामाजिकता एवं प्रासंगिकता को दिखाने का प्रयत्न किया है। उस वक्त की विषम परिस्थिति और अपने स्वार्थ के लिए जिस प्रकार मनुष्य मज़हब के नाम पर हिंसा प्रवृत्ति पर उतर आया है, इसका वर्णन कवि अपनी कविता में करते है-

---

[47] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, तानाशाह कहता है, पृष्ठ 67**

[48] **आलोचक रविभूषण से साक्षात्कार के दौरान प्राप्त जानकारी**

देश-काल की सीमाएँ पार करते हुए जो घट चुका है और जो घट सकता है उसको वास्तविकता देने का प्रयत्न कवि का रहा है। बाबरी मस्ज़िद टूटने की तारीख़ में एक प्रकार का सन्नाटा है। यह सन्नाटा हम उनकी '6 दिसम्बर' कविता में देख सकते हैं-

"रसोई घर में एक गिलास आवाज़ करता हुआ गिरता है
किसी बड़ी ख़ामोशी में डूबने के लिए
दीवार पर पुराना तस्वीरों वाला कैलेंडर
जिसे फाड़कर फेंक दिया गया
वहां एक कैलेंडर का ख़ालीपन है
उड़े हुए रंगों का एक शून्य
जैसे वह कैलेंडर वापस आया हो अपनी तस्वीरें और तारीख़ें गिराकर
जैसे चीज़े लौटती हैं अपना छोटा-सा प्रतिशोध लेने
और कुछ देर टिकने के लिए।"[49]
(1996)

अयोध्या में घटित जातीय दंगों के बाद लिखी गयी यह कविता हमें बताती है कि मानव मनुष्यता को भूलकर बड़ी निर्दयता के साथ एक-दूसरे पर टूट पड़ता है केवल प्रतिशोध लेने के लिए। ये जातीय दंगे हमारे लिए कोई नवीन विषय नहीं है। हम उसके विरूद्ध लड़ने का साहस नहीं जुटाते अपितु यह कहे कि उसके विरूद्ध विद्रोह करने का साहस हम खो चुके हैं।

मंगलेश डबराल एक सजग कवि है। समाज में चारों तरफ़ फैली हुई विकृतियों को देखकर उनका मन विचलित होता है और वे अपनी लेखनी के माध्यम से कड़ा प्रहार भी करते हैं। चारों तरफ़ फैली हुई हिंसा, दंगे व विसंगतियों को देखकर

[49] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, 6 दिसंबर, पृष्ठ 34**

उन्हे बड़ा दु:ख होता है लेकिन इससे भी ज़्यादा दुख, अचरज उन्हें इस बात का है कि पहले समाज में इन बुराईयों के ख़िलाफ़ तीव्र प्रतिक्रिया थी, लोग विरोध करते थें, लेकिन प्रतिरोध करने की वह व्यवस्था आज लुप्त हो गई है।

स्त्रीवाद का प्रभाव

मंगलेश डबराल की कविताओं में स्त्री जाति के प्रति गहरी आस्था है। वे उनके भीतर छिपे हुए दुखों को बहुत करुणा की आवाज़ से पुकारते हैं। 'लड़की और अंधा आदमी', 'तारे के प्रकाश की तरह', 'तुम्हारे भीतर' और 'स्त्रियाँ' आदि ऐसी ही कविताएं हैं जिनमें भारतीय स्त्री की संघर्ष भरी कहानी तथा उसकी जीवन शक्ति को पकड़ने का सार्थक प्रयास किया गया है। मंगलेश डबराल 'तारे के प्रकाश की तरह' नामक कविता में स्त्री देह को लेकर घर की परिकल्पना ऐसे करते हैं-

"स्त्री का देह उसका घर है
वह बिखरी हुई चीजों को सहेजती है
तस्वीरों और दीवारों की धूल साफ़ करती है
कपड़े तहाकर रख देती है
वह अपने भीतर थामे हुए रहती है टूटते पहाड़ों
बिफरती नदियों और ढहते सौर मंडलों को
वह कुछ कहती है या सर झुकाये हँसती है
या उसके आंसू कुछ देर फ़र्श पर चमकते हैं
ये सब उदाहरण है कि वह किस तरह बचाने में जुटी है।"[50]

'आवाज़ भी एक जगह है' संग्रह में स्त्रियाँ और उनकी क्रियाविधियों पर कुछ कविताएँ हैं। मंगलेश डबराल ने स्त्रियों का जो चित्र खींचा है उसे देखकर ऐसा लगता है कि कुछ पुरुषों के लिए स्त्रियाँ किसी तरह मख़ौल का विषय बनी हुई हैं जब कि स्त्रियाँ अपनी स्वाभाविकता, सहजता के साथ कोई मर्म की बात कहना चाहती हैं। मंगलेश डबराल अपनी कविताओं

[50] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, तारे के प्रकाश की तरह, पृष्ठ 69**

में स्त्री मन की स्वाभाविकताओं को उजागर करते हैं। वे स्त्री मन के मर्म को जो भले ही धीमी गति में प्रकट होता है, उसे सुनते हैं, उसके होने के एहसास को समाज की मुख्यधारा से जोड़ना चाहते हैं। वे इस यथार्थ को जानते हैं कि-

"प्रेम करने के अपराध में
उन्हें अच्छी तरह भुला दिया जा चुका होता है
तब कहीं से आती है उनके होने की आवाज़
उनका कोई प्रिय गीत अचानक सुनाई दे जाता है,
वे धीमी कोमल आवाज़ में कुछ कहती दिखती है।"[51]

मंगलेश डबराल की कविताओं में स्त्री की समस्याओं को मूर्तरूप देने की कोशिश की गई है। समाज में सर्वाधिक शोषण का शिकार नारी ही होती है। नारी उत्पीड़न तथा यातनागयी जीवन का ज्वलंत चित्रण उनकी कविता 'अगले दिन' में हुआ है। इसमें बलात्कार की शिकार हुई औरत का चित्रण किया गया है। प्रेम करने वाली नारी कवि के हृदय में संवेदना भर देती है। प्रिय लहरों के स्थान पर दर्दनाक चीख ही सुनाई देती है। जहाँ शालीनता सिहरती हुई आतंकित चेहरे वाली महिला है, जहाँ पर झड़े हुए पत्ते हैं, लुटी हुई देह है। जैसे-

"अगले दिन उसके भीतर
कितने झड़े हुए कितने पत्ते
अगले दिन मिलेगी खुरों की छाप
अगले दिन अपनी देह लगेगी बेकार
आत्मा हो जाएगी असमर्थ
कितने कीचड़ कितने ख़ून से भरी
रात होगी उसके भीतर अगले दिन।"[52]

---

[51] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, स्त्रियां, पृष्ठ 19**
[52] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, अगले दिन, पृष्ठ 18**

मंगलेश डबराल के साहित्य में नारी-विषयक गहरे चिन्तन समाए हुए हैं। उन्होंने अपनी 'संरचना' कविता में नारी को 'धरित्री' तथा जीवन का मूलाधार बताया है। लेकिन इस कविता में नारी की दयनीय स्थिति स्वतः उभर कर हमारे सामने आ जाती है, जैसे

"मैं कहना चाहता था तुम पृथ्वी हो
तुम में शुरू होता है जीवन, तुम में ख़त्म ।
उसने कहा मुझे मालूम है भविष्य
मैं रोज देखती हूँ अपने हाथ-पैर
जहाँ से चढ़कर आता है अंधकार ।"[53]

पुरुष प्रधान भारतीय समाज में नारी को भोग्या बनाकर, उसकी पवित्रता का आदर्श रखकर, पतिव्रत धर्म का उपदेश देकर, समाज ने उसे ख़ूब छला है, उसका शोषण किया है। मंगलेश डबराल ने अपनी रचनाओं में ऐसी स्त्री का वर्णन किया है जो अपने जीवन में बार-बार छल-कपट का शिकार होने के बावजूद भी अपने पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह करती है और अंततः प्रेम में बसा हुआ घर चाहती है। इसका उदाहरण मंगलेश अपनी कविता में प्रस्तुत करते हैं -

"एक आँख से हँसती एक से रोती हुई
वह फिर से आ पहुँचती है पुरुष के सामने
जैसे उसका कुछ न छीना गया हो
जैसे वह उसी तरह करती आ रही हो प्रेम ।"[54]

'प्रेम करती स्त्री' कविता में कवि औरत के आंतरिक दर्द को पहचानकर उसकी वेदना की अभिव्यक्ति करते हैं कि बिखरें हुए घर, खाये बिना खाने का खत्म हो जाना, सगे-संबंधियों द्वारा उसे छोड़कर चले जाने पर भी वह निराश, हताश न होकर अपना जीवन जीने की कोशिश करती है। इन सभी बातों को कवि ने अपनी कविता में इस तरह उभारा है-

---

[53] **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, सरंचना, पृष्ठ 25**
[54] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, स्त्रियां, पृष्ठ 18-19**

"उसकी सहेलियाँ एक-एक कर
उसे छोड़कर चली जाती हैं
उसके खाये बिना हो जाता है ख़ाना ख़त्म
प्रेम करती स्त्री
ठगी जाती है रोज
उसे पता नहीं चलता बाहर क्या हो रहा है
कौन ठग रहा है, कौन है खलनायक
पता नहीं चलता कहाँ से शुरू हुई कहानी।'[55]

नारी उत्पीड़न और उसकी यातनामय जीवन स्थितियों का यथार्थ चित्रण करने में मंगलेश डबराल माहिर हैं। भारतीय नारी की एक ख़ास विशेषता है कि वह अपने पति का अनुसरण करना अपना सर्वस्व समझती है। जन्म से लेकर मृत्यु तक एक स्त्री पुरुष के साथ जुड़ी हुई है। वह आँख बंद किए हुए सही या ग़लत की पहचान किए बिना ही उसके पीछे-पीछे चलती है। उसकी इसी निश्छलता के कारण वह सर्वाधिक शोषित है। जैसे -

"सारा दिन काम करने के बाद
एक स्त्री याद करती है
अगले दिन के काम
एक आदमी के पीछे
चुपचाप एक स्त्री चलती है
उसके पैरों के निशानों पर
अपने पैर रखती हुई
रास्ते भर नहीं उठाती निगाह।"[56]

---

[55] डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, प्रेम करती स्त्री, पृष्ठ 15
[56] डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, एक स्त्री, पृष्ठ 21

इस साल (2024) अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस - 8 मार्च के दिन भारतीय भाषा परिषद के पेज पर एक लेख छपा था जिसमें लेखक शंभूनाथ ने एक काफ़ी गंभीर सवाल उठाया-

"19वीं सदी में स्त्री को केंद्र में रखकर जो सुधार आंदोलन चले थे, उनका बौद्धिक प्रभाव अब मिटता जा रहा है। इधर जेंडर मुद्दे पर नए-नए ढंग से कूपमंडूकता बढ़ाई जा रही है।... ऐसी घड़ियों में क्या स्त्री-बुद्धिजीवी संकुचित स्त्री विमर्श से बाहर आकर समाज के जमीनी स्तर पर सुधार आंदोलन को पुनर्जीवित कर सकते हैं?"[57]

ऐसे में मंगलेश डबराल की कविताओं का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है क्योंकि उन्होंने इस तरह की कई कविताओं के माध्यम से स्त्री विषयक मुद्दों पर गहरी चिंता प्रकट की है। पेड़, वायु, पानी ये हमारे जीवन के मूल तत्त्व है। इन्हीं तत्त्वों की भांति वे स्त्रियों को भी महसूस करते हैं। खुद मंगलेश डबराल कहते हैं कि "अगर मुझ में कुछ गुण है तो उससे ज़्यादा कुछ मुझे स्त्रियों से ही मिले और मैं खुद को भी भीतर से आधा स्त्री महसूस करता हूँ और कभी-कभी सोचता हूँ कि अगर मैं वाकई स्त्री होता तो इस संसार को प्रेम की कोमलता और जगमगाहट से भर देता।"[58]

उपर्युक्त विवेचन यह स्पष्ट करता है कि कवि ने अपने साहित्य में स्त्रियों की समस्याओं को मूर्तरूप देने की कोशिश की है। स्त्री चित्रण में कवि ने स्त्री मन की संकल्प शक्ति, जीवटता और जिजीविषा का मार्मिक वर्णन किया है। केवल एक स्त्री ही स्त्री की पीड़ा नहीं समझती बल्कि एक संवेदनशील व्यक्ति, फिर चाहे वह किसी भी लिंग का हो, एक स्त्री के मन को समझ सकता हैं यह बात कवि मंगलेश डबराल ने सिद्ध की है। परिवार की धुरी है - नारी । सदियों से शोषित, पीड़ित और कराहती हुई आज की नारी सारी बेड़ियों को तोड़कर चेतना से सराबोर है। जागरूक होकर वह समाज के पुरुष वर्ग का सामना कर रही है। शोषकों द्वारा पीड़ित शोषित वर्ग, उनकी असहायता, मजबूरी, अभावग्रस्त जीवन आदि का जीता-जागता चित्रण मंगलेश डबराल अपने साहित्य के माध्यम से हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। वे अपनी कविताओं में न केवल नारी की बेबसी व लाचारी का वर्णन करते हैं अपितु वे उनमें एक नई चेतना जगाने की चेष्टा भी करते हैं।

---

[57] **शंभुनाथ, संपादकीय मार्च 2024 : स्त्री, स्त्री-वाद और स्त्री-सशक्तीकरण (लेख), bhartiyabhashaparishad.org**

[58] **कवि मंगलेश डबराल से ओम निश्चल की बातचीत, साक्षात्कार 2004**

मानवतावाद का प्रभाव

प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध में हुए संहार और मानव मूल्यों के ह्रास को देखकर सारे विश्व में विश्वबंधुता, शांति आदि मानवतावादी विचारों का एक प्रवाह आया और विश्व के सभी राष्ट्रों में मानवतावाद ने महत्ता हासिल की। भारतीय जीवन और साहित्य में अगर देखे तो हमारी संस्कृति में मानवतावादी चिंतन की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। अतः हिंदी के आधुनिक काल के कवियों पर भी इसका प्रभाव देखा जा सकता है। कवि रवींद्रनाथ टैगोर, जयशंकर प्रसाद, रामदरश मिश्र, निराला, आदि कवियों ने अपनी लेखनी से मानवतावाद का मुक्त कंठ से गान किया है। मंगलेश डबराल द्वारा बचपन में ही जयशंकर प्रसाद जैसे बड़े लेखकों को पढ़ने की वजह से उनपर भी यह प्रभाव स्पष्ट रुप से देखा जा सकता है।

मानवतावाद को मूलत: मनुष्य जाति के प्रति नैतिक दृष्टि रूप में देखा जाता है। जहा दयालुता, परोपकार सहानुभूति जैसे गुणों को मनुष्यता के लिए सार्वभैमिक माना जाता है। इसके अनुसार पीड़ा और यातना के संदर्भ में किसी के प्रति लिंग, प्रजाति, राष्ट्रीयता, धर्म के आधार पर कोई भेद-भाव नहीं रखा जाता है। मानवीय उच्चतर मूल्यों को 'मानवतावाद ' कहा जाता है। मानवीय उच्चतर मूल्य का अर्थ है स्वार्थ से ऊपर उठकर दूसरों के हित में कार्य करना।

मंगलेश डबराल की लगभग तमाम कविताओं में मानवतवाद के चिह्न दृष्टिगत होते हैं। वे लुप्त होती जा रही एक मनुष्य के प्रति दूसरे मनुष्य की संवेदना को बचाना चाहते हैं। वे हमारे इंसान होने के मतलब को बचाना चाहते है -

"एक सरल वाक्य बचाना मेरा उद्देश्य है
मसलन यह कि हम इंसान हैं
मैं चाहता हूँ इस वाक्य की सच्चाई बची रहे
सड़क पर जो नारा सुनाई दे रहा है
वह बचा रहे अपने अर्थ के साथ
मैं चाहता हूँ निराशा बची रहे
जो फिर से एक उम्मीद पैदा करती है अपने लिए
शब्द बचे रहें

जो चिड़ियों की तरह कभी पकड़ में नहीं आते

प्रेम में बचकानापन बना रहे

कवियों में बची रहे थोड़ी लज्जा।"[59]

शुरुआती दौर में मानव का मन निश्चल व छलकपट रहित था लेकिन जैसे ही मानव सुविधा भोगी होता गया तो उसके मन के रंग भी बदलने लगे। आज मानव जीवन के चारों ओर भ्रम, निराशा, अनास्था, अंधविश्वास, अकेलापन, संत्रास आदि के काँटे उगने लगे हैं। मंगलेश डबराल ने अपने साहित्य के माध्यम से मानव-मन के हर अच्छे बुरे रूप को चित्रित किया है और समाज को मानवता की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया है।

मानव मन को अपने वश में करने वाली बुराईयां जैसे- घृणा, झूठ, मूर्खता, धूर्त्तता, पाखण्ड, क्रूरता आदि मनोरोगों का वर्णन मंगलेश डबराल ने अपनी कविता 'ख़ुशी कैसा दुर्भाग्य' के माध्यम से किया है। उनके अनुसार आजकल प्रेम की जगह घृणा ने ले ली है। इन सभी बुराईयों का मानवीकरण करके कवि हमें इनसे अवगत करवाना चाहते है। क्रूरता का वर्णन करते हुए कवि कहते है-

"क्रूरता तुम किस शान से टहलती हो

अपनी ख़ूनी पोशाक में

मनोरोग तुम फैलते जाते हो सेहत के नाम पर

ख़ुशी कैसा दुर्भाग्य

तुम रहती हो इन सबके साथ।"[60]

अकेलापन मन की वह स्थिति होती है जिसमें व्यक्ति परिवेश से, समाज से कटता हुआ परायेपन की चक्की में पिसने लगता है। अकेलापन व्यक्ति विशेष की सामूहिक प्रगति पर अभिशाप बन जाता है। अकेलापन ग्रामीण जिंदगी की अपेक्षा शहरी जिंदगी में अधिक विद्यमान है। इसी अकेलेपन को मंगलेश डबराल ने अपनी कविता 'आयोजन' में दिखाया है-

---

[59] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, मैं चाहता हूं, पृष्ठ 84-85**

[60] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, ख़ुशी कैसा दुर्भाग्य, पृष्ठ 88**

"इन दिनों हर कोई जल्दी में है

लोग थोड़ी-थोड़ी देर के लिए झलकते हैं, अकेले पीते हुए

धुँधले आकारों जैसे वे एक-दूसरे की तरफ़ आते हैं

उनके हाथ में होता है वहीं अकेलेपन का गिलास।"[61]

भौतिक सुख-सुविधाओं के पीछे भागते-भागते मनुष्य इतना दूर निकल जाता है कि उसे समाज के बारे में कोई परवाह ही नहीं होती । वह केवल आत्मकेन्द्रित हो जाता है। किसी भी तरह सुखों को प्राप्त करना चाहता है, लेकिन भौतिक ऐश्वर्य की प्राप्ति के बाद उसे जब कभी समाज व अपने परिवार की याद आती है तो वह अपने-आपको अकेला महसूस करता है।

केवल भारत का ही चित्र उनकी कविताओं में नहीं मिलता, बल्कि विदेशी यात्राओं से प्राप्त अनुभव भी उनकी कविताओं के विषय बने हैं। 1991 में जब मंगलेश डबराल अंतर्राष्ट्रीय लेखन कर्मशाला में भाग लेने के लिए अमेरिका गए थे, तब वहा भी उन्होंने बाज़ारवाद एवं उपभोक्तावाद से उपजे बिखराव, टूटते मानवीय संबंध एवं यांत्रिक होकर विकृत हो जाने की घटनाएं देखी -

"अमेरिका में रोना मना है

उदास होना मना है

एक बहुत बड़ी आँख सबको देख रही है

पीछे मुड़कर जीवन को देखना मना है

वह किस्सा किसे नहीं मालूम

कि आलीशान दुकान में सामान बेचती

एक दुबली - सी लड़की

जो कुछ सोचती हुई-सी बैठी थी

एक दिन एक ग्राहक के सामने मुस्कुराना भूल गयी

---

[61] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, आयोजन, पृष्ठ 87**

शाम को उसे नौकरी से अलग कर दिया गया

यह बात जब उसका पति उससे अलग हुआ

उसके एक दिन के बाद की है।"[62]

(1991)

सामाजिक विसंगतियों के कारण व्यक्ति के मन में अपनेआप अनास्था का प्रवेश हो जाता है तो कभी-कभी जीवन के प्रति आस्थावादी स्वर भी पैदा हो जाता है। मंगलेश डबराल संघर्षों के बीच पिसकर हार मानने वाले नहीं है बल्कि वे जीवन के प्रति आशावान होकर आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हुए लिखते हैं-

"मैं अपनी उदासी के लिए

क्षमा नहीं मांगना चाहता था

मैं नहीं चाहता था मामूली

इच्छाओं को चेहरे पर ले आना

मैं भूल नहीं जाना चाहता था

अपने घर का रास्ता।"[63]

(1987)

मंगलेश डबराल कहते हैं कि हमारी व्यवस्था ही हमें पागल बना देती है। अगर हम प्रयास करें तो इस जीर्ण-शीर्ण व्यवस्था को बदला जा सकता है। मंगलेश जी अक्सर चीजों को और नियमों को उलट-पलट कर देखते हैं जिसके कारण उसके अन्दर छिपे रहस्य खुल जाते हैं। अपनी कविता में वे चित्रित करते हैं कि जब मनुष्य नियमों को तोड़कर कोई कार्य करता है तो उसकी स्थिति विचित्र अर्थात् एक पागल की भांति हो जाती है। मंगलेश की काव्य की दुनिया बहुत विस्तृत है इसलिए उनकी संवेदना चारों ओर फैली हुई है। हम उनकी कविताओं 'पागल' और 'खुशी कैसा दुर्भाग्य' में इस चित्रण

[62] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, अमेरिका में कविता, पृष्ठ 75-76**

[63] **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, घर का रास्ता, पृष्ठ 75**

को देख सकते हैं। अभिशप्त क़िस्म के चरित्रों, उपेक्षितों और अलक्षित रहने वाले अभागों के प्रति संवेदना जगाते हुए कवि लिखते हैं-

"तरह-तरह के इशारे करते

पागलो के बीच से

अक्सर गुजरते हैं स्वस्थ मस्तिष्क के लोग

उनकी आँखों में थोड़ा-सा झाँककर

एकाएक सहमते हुए आगे बढ़ जाते हैं

जैसे झटक देते हों अपने जीवन का कोई अंश

अपना कोई क्रोध कोई प्रेम कोई विरोध

अपनी ही कोई आग

जो उनसे अलग होकर अब भटकती है

व्यस्त चौराहों और नुक्कड़ों पर

कपड़े फाड़े बाल बिखराये सूखी रोटियाँ संभाले हुए।"[64]

मंगलेश डबराल को करुणा और अवसाद का कवि माना जाता है जिसके कारण उनकी अधिकतर कविताएँ एक उदासी से भरे हुए और अकेलेपन के कारण बुरी तरह टूटे हुए व्यक्ति की कविताएँ हैं। अकेलेपन के कारण इस सामाजिक लड़ाई में कुछ भी परिवर्तन न करने के कारण दुख में डूबे हुए व्यक्ति को मंगलेश ने अपनी कविताओं में चित्रित किया है। उनकी 'थकान' कविता इस दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण है-

"शाम को सारी दुनिया झाड़कर

बिस्तर पर

औंधा होकर अंत में

क्या बचता है कंधे पर बैठे

---

[64] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, पागलों का एक वर्णन, पृष्ठ 22**

दुख

के अलावा

आत्मा पर फफूंद के अलाव क्या बचता है

अंत में।"[65]

अपनी कविताओं के माध्यम से कवि मानव को समझाते हुए कहते हैं कि निराश होकर अपने हाथों को बाँधकर जीवन जीना उचित नहीं है बल्कि हमें उस निराशा को दूर करने के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए। हमें इस भयावहता के माहौल में भी उम्मीद नहीं त्यागनी चाहिए बल्कि इसको दूर करने के लिए सतत् संघर्षरत रहना चाहिए। वे लिखते हैं -

"उठो और चल दो

हम जानते हैं

धुआँ खून और चीख बहुत पहले से मौजूद है

इन सबकी छाप है हमारे विचारों पर

अपने विचारों से ज्यादा दूर नहीं गये हैं हम"[66]

अतः स्पष्ट है कि हमें मानव मन के विविध रूपों के दर्शन मंगलेश डबराल की कविताओं में होते हैं। उन्होंने मानवीय जीवन के हर पहलू का बड़ी पैनी नज़र से विश्लेषण किया है और जगह जगह पर मानवता का संदेश दिया है जिससे उनकी मानवतावादी दृष्टि की झलक मिलती है।

निष्कर्ष

मंगलेश जी को किसी एक वाद अथवा विचारधारा से आबध्द कर विवेचित नहीं किया जा सकता। इनकी रचनाधर्मिता

[65] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, थकान, पृष्ठ 35**

[66] **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, दिनचर्या, पृष्ठ 61**

बहुआयामी है। उनके कविता संग्रहों को मार्क्सवाद, नक्सलवाद, स्त्रीवाद, मानवतावाद आदि से जोड़कर पढ़ा तो जा सकता है लेकिन केवल एक आंदोलन के प्रभाव तक उनके काव्य को सीमित नहीं किया जा सकता। उनके लेखन कार्य के दौरान समाज में जो कुछ भी घट रहा था, उसी के परिणामस्वरूप उन्होंने लिखा।

संदर्भ सूची

आधार ग्रंथ

1) डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, राधाकृष्ण प्रकाशन (दिल्ली), संस्करण 2021
2) डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन (दिल्ली), संस्करण 2022
3) डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, राधाकृष्ण प्रकाशन (दिल्ली), संस्करण 1997
4) डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, वाणी प्रकाशन (नयी दिल्ली), संस्करण 2004
5) डबराल मंगलेश, नए युग में शत्रु, राधाकृष्ण प्रकाशन (नयी दिल्ली), संस्करण 2013

सहायक ग्रंथ

1) गाबा ओमप्रकाश, राजनीति-सिद्धांत की रूपरेखा, नैशनल पेपरबैक्स (नयी दिल्ली), संस्करण 2019
2) सिंह गुरचरण सुमन पंडित (सं), नरेन्द्र मोहन रचनावली – 1
3) कुमार कृष्ण, समकालीन कविता का बीजगणित, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2014
4) अनंत विजय, मार्क्सवाद का अर्धसत्य, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2019
5) मिश्र शिवकुमार, मार्क्सवादी साहित्य चिंतन, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2001
6) सिंह (डॉ) प्रेम, मानवतावाद की अवधारणा और भावानीप्रसाद मिश्र का काव्य, राज सूर्य प्रकाशन, संस्करण 2014

अंतर्जाल

1) प्रियदर्शन, मंगलेश डबराल: राजनीतिक चेतना और मानवीय आभा से दीप्त कवि का जाना (लेख), बीबीसी हिंदी, bbc.com, 9 दिसंबर 2020
2) पचौरी सुधीश, 'मंगलेश को मंगलेश ही रहने दो देवत्व न दो' (संस्मरण), hindi.theprint.in, 10 दिसंबर 2020
3) वेसलर (डॉ.) हाइंस वर्नर, "मैदान में एक पहाड़ की आवाज अब भी गूंजती है मंगलेश डबराल", गर्भनाल (मासिक ई-पत्रिका), www.garbhanal.com, 1 जनवरी 2021
4) शंभुनाथ, संपादकीय मार्च 2024 : स्त्री, स्त्री-वाद और स्त्री-सशक्तीकरण(लेख), bhartiyabhashaparishad.org, 8 मार्च 2024
5) हिंदी कविता https://hindi-kavita.com/
6) कविता कोश http://kavitakosh.org
7) डबराल मंगलेश, दिल्ली के दंगों के पीछे कौन, 4 मार्च 2020, Universal News Agency (YouTube)
8) डबराल मंगलेश, "कविता मनुष्य को बेहतर संवेदनशील व्यक्ति बनाती है", 28 दिसंबर 2018, Indian Cultural Forum (YouTube)
9) डबराल मंगलेश, हिंदी अब धमकी की भाषा बनती जा रही है (साक्षात्कार), 30 जुलाई 2019, NewsClickin (YouTube)
10) इरफ़ान, Interview with Manglesh Dabral, 10 दिसंबर 2020, Mera Pedia (YouTube)
11) Kalam Raipur with Manglesh Dabral (सक्षात्कार), 13 June 2018, कलम (YouTube)
12) Meet the author: Manglesh Dabral, 24 अक्टूबर 2018, department of English, University of Delhi (YouTube)
13) प्रधान गोपाल, नक्सलबाड़ी आंदोलन और भारतीय साहित्य (लेख), 25 मई 2020, samkalinjanmat.in
14) सिंह पंकज द्वारा मंगलेश डबराल का इंटरव्यू (मूलतः दूरदर्शन में प्रसारित), 16 मई 2021, www.kafaltree.com (YouTube)

पत्रिका

1) साक्षात्कार, अगस्त 2004

54

तृतीय अध्याय

मंगलेश डबराल की कविताओं में अभिव्यक्त सामाजिक-सांस्कृतिक प्रश्न

समकालीन कविता में समाज: एक सामान्य परिचय

समय अपनी एक विशेष पहचान रखता है और साहित्य में वह पहचान निहित होती है। किसी भी समय विशेष की परिस्थितियों का ज्ञान उस समय के साहित्य से प्राप्त होता है। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता हैं। जो कुछ समाज में हो रहा है, साहित्य न केवल उसका चित्रण ही करता है अपितु नवीनता का सृजन भी करता है। सुप्रसिद्ध आलोचक मैनेजर पाण्डेय इस विषय पर लिखते हैं कि - साहित्य एक ओर सामाजिक यथार्थ, सामाजिक संबंधों और समाज में सक्रिय भौतिक वैचारिक शक्तियों का प्रतिबिम्बन करता है, तो दूसरी ओर प्रभावी रूप में सामाजिक परिवर्तन की चेतना का निर्माता भी होता है।[67]

साहित्य से समाज की विभिन्न परिस्थितियों की जानकारी होती है और प्रचलित व्यवस्था को परिवर्तित करने के लिए भी साहित्य नया वातावरण उपस्थित करता है। साहित्य में समाज की विभिन्न स्थितियों, विभिन्न आचार-विचार एवं रूढ़ियों तथा लोकव्यवहारों का चित्रण किया जाता है। उसमें युगीन समाज का प्रतिबिंब दिखाई देता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है और जनता की चितवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।[68] इस बात से स्पष्ट है कि साहित्य में समाज का दर्शन होता है, साहित्य में समाज की सारी भावनाएँ, महत्वाकांक्षाएँ, प्रेरणाएँ, स्पष्ट रूप से झलकती हैं। अत: साहित्य का समाज से घनिष्ठ संबंध स्पष्ट है।

जिस प्रकार प्रत्येक समाज काल विशेष में अपनी अलग पहचान रखता है, उसी प्रकार उस विशेष काल और समाज में रचा गया साहित्य भी अपनी एक विशिष्ट पहचान रखता है। समकालीन कविता के प्रमुख कवियों में अधिकांश ने स्वतन्त्र

---

[67] **पाण्डेय मैनेजर, शब्द और कर्म, पृष्ठ 32**

[68] **सिंह (डॉ.) फणीश, हिंदी साहित्य : एक परिचय, पृष्ठ 15**

भारत में साँस ली। लेकिन यह स्वतन्त्रता विसंगतियों से भरी थी। इन्हीं विसंगतियों का यथार्थ चित्रण समकालीन कविता के अन्य कवियों के साथ कवि मंगलेश डबराल की कविताओं में भी देखा जा सकता है। उनको कई आलोचकों द्वारा 'गहरे अवसाद के कवि' माना गया है और वे ख़ुद यह मान्यता रखते थे कि "अवसाद है तो समझो कि दुनिया ठीक चल रही है"[69]। इस वाक्य में केवल अवसाद की बात नहीं हो रही बल्कि उसमें एक गहरी चिंता भी निहित है। यह चिंता आम आदमी के जीवन से जुड़ी है, समाज से जुड़ी है। वे अपनी कविताओं में व्यक्त चिंताओं के प्रति सबका ध्यान आकृष्ट करते हैं और इस प्रकार चिंता को चिंतन में परिणित करते हैं। उनकी तमाम कविताओं में विभिन्न सामाजिक-संस्कृतिक विषयों को लेकर चिंतन के आयाम उभरकर आए हैं जिनपर आगे विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

बाल चिंतन

पिछले अध्याय में हमनें देखा कि मंगलेश डबराल पर उनके समय के कई सारे आंदोलनों का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव दिखाई देता है। जिस समय में वे लिख रहे थें, उस समय उन्होंने बच्चों की दयनीय स्थिति को देखते हुए भी कविताएं लिखीं। भारत में सैकड़ों साल से चल रहीं बाल-मज़दूरी की कुप्रथा के विरुद्ध उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से विचार किया है। 1980 के दशक में समाज सुधारक कैलाश सत्यार्थी द्वारा शुरु किए गए 'बचपन बचाओ आंदोलन' का यह अप्रत्यक्ष प्रभाव हो सकता है।

कैलाश सत्यार्थी के अनुसार "बाल मज़दूरी महज़ एक बीमारी नहीं है, बल्कि कई बीमारियों की जड़ हैं। इसके कारण कई ज़िंदगियां तबाह होती हैं।"[70] बच्चे देश का भविष्य होते हैं और यदि उनके ही अधिकार छीन लिए गए तो यह समस्या अनेक समस्याओं को जन्म दे सकती है।

ऐसे में मंगलेश डबराल ने बच्चों की दयनीय स्थिति तथा उनकी समस्याओं को केन्द्रित रखके कुछ कविताएँ लिखी हैं। कवि ने पूरी आत्मीयता के साथ उनकी स्थिति को चित्रित किया है। जिन बच्चों को स्कूल में जाकर शिक्षा ग्रहण करनी

[69] **कवि मंगलेश डबराल की फेसबुक पेज से**

[70] **लाइव हिंदुस्तानी टीम, जानिए बचपन बचाओ आंदोलन के बारे में (लेख)**, https://www.livehindustan.com/news

चाहिए वहीं बच्चे आज बाल- मज़दूरी करते नज़र आ रहे हैं। मजबूरीवश बच्चें अपना पेट भरने के लिए भीख तक माँगने पर मजबूर हो जाते हैं। इसी दयनीय स्थिति का चित्रण कवि इस प्रकार करते हैं-

"बारह-तेरह बरस का लड़का
भीड़ भरी बस में गाता था एक खुशी का मीठा गाना
गले में नन्हा हारमोनियम लटकाये
उसकी चारेक बरस की बहन मांगती थी पैसा
मुसाफ़िरों से घूम-घूमकर"[71]

इसी तरह भूख के कारण हुए जीर्ण शरीर वाले बच्चे का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं-

"एक कमज़ोर खिलौना दिखा
उससे भी कमज़ोर एक बच्चे के हाथ में
वह जब भी भूख से रोता
माँ उसकी थमा देती उसे खिलौना"[72]

यहां पर मां-पिता की बेबसी और ग़रीबी का प्रभाव उनके बच्चों पर भी किस प्रकार पड़ता है इसकी कल्पना की जा सकती है। बच्चों के निर्मल मन को भौतिक जगत की उतनी कल्पना नहीं होती और इतनी प्रौढ़ता भी नहीं होती कि वे स्थितियों को समझते हुए बुनियादी आवश्यकताओं से भी मुंह मोड़ दे। उनके बढ़ते शरीर को कई बार परिस्थितियों के कारण दो वक्त की रोटी भी नहीं मिल पाती। बच्चों की इस स्थिति से कवि का हृदय वेदना से भर जाता है और समाज को जागृत करने के लिए, समाज को बच्चों की दयनीय दशा से अवगत करवाने के लिए वे शहर की खाली पड़ी दीवार पर भी भूखे बच्चों की तस्वीरें लगाने की सोचते हैं- "यहाँ भूखे बच्चों की तस्वीर लगायी जा सकती है"[73]

---

[71] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, गाता हुआ लड़का, पृष्ठ 60**
[72] **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, खिलौने, पृष्ठ 73**
[73] **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, सफ़ेद दीवार, पृष्ठ 52**

इसी संवेदना के आधार पर विजय कुमार ने इन्हें अवसाद और करुणा का कवि मानते हुए कहा है[74] कवि ने पैदल स्कूल जाने वाले उन ग़रीब बच्चों का चित्रण भी अपने काव्य में किया है। सुबह घर से स्कूल जाने के लिए वे जल्दी जाते हैं लेकिन ज्यादा दूर स्कूल होने के कारण, सुख-सुविधाएँ न मिलने के कारण वे देर से स्कूल पहुँचते हैं। साथ ही कीचड़-गन्दगी होने कारण उनकी स्कूल की वर्दियाँ भी मैली हो जाती है, जिसके कारण उन्हें सभी के सामने शर्मिन्दगी महसूस करनी पड़ती हैं जैसे-

"पैदल जाने वाले बच्चों का कोई भरोसा नहीं
वे घर से जल्दी चल पड़ते हैं
और स्कूल पहुँचते हैं अकसर देर से
रास्ते में गंदी हो जाती है उनकी पोशाकें
जिन्हें संभालते हुए वे भागते हैं
आँखें नीची किये खड़े होते हैं कतार में"[75]

अपने काव्य संग्रह 'पहाड़ पर लालटेन' में उन्होंने पहाड़ी लोगों की मुसीबतों के बारे में बताया है। वे कितनी मुसीबतों से अपना तथा अपने परिवार का पालन-पोषण करते हैं। कवि ने जंगलों में काम करने वाली औरतों और बूढ़ों के साथ-साथ बच्चों की भी दयनीय स्थिति को दर्शाया है-

"जंगल में औरतें हैं
लकड़ियों के गट्ठर के नीचे बेहोश
जंगल में बच्चे हैं

[74] कुमार विजय, कविता की संगत, पृष्ठ 130

[75] डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, पैदल बच्चे स्कूल, पृष्ठ 30

असमय दफ़नाये जाते हुए

जंगल में नंगे पैर चलते बूढ़े हैं"[76]

एक तरफ़ हम देखते हैं कि मंगलेश डबराल ने बच्चों की दयनीय स्थिति से हमें अवगत करवाया है वहीं दूसरी तरफ़ वे हमें यह भी बताते हैं कि बच्चें इतने सरल होते हैं कि एक अत्याचारी जब लोगों पर अत्याचार करके थकान का अनुभव करता है तो वह अन्ततः बच्चों के पास आता है और उन्हें अपनी गोद में उठाकर अपने जीतने की कथा सुनाता हुआ कहता है। बच्चों के पास आकर ही उनकी सारी थकान मिट जाती है। जैसे-

"कहते हैं

बच्चे कितने अच्छे हैं

हमारी तरह नहीं हैं वे अत्याचारी

बच्चों के पास आकर

थकान मिट जाती है उनकी

जो पैदा हुई थी करके अत्याचार।"[77]

आज बच्चे की मासूमियत कहीं खो सी गई है और बच्चा रोना, हँसना, चहकना भूल गया है क्योंकि जो बचपन उसका खेलने में व्यतीत होना चाहिए था वो उसका श्रम करने में बीत जाता है। एक बच्चा जब थोड़ा बड़ा होने लगता है तो वह अपने बचपन की स्मृतियों को याद करके सोचता है कि उसने न जाने कितने खिलौने तोड़े, ग़रीबी के कारण कमज़ोर शरीर होते हुए वह न जाने कितनी बार नीचे गिरा, रोया, फिर उठकर चल दिया घर की तरफ़। जैसे-

"उसे याद था ठीक-ठीक कितने

खिलौने तोड़े उसने हर साल

कितनी बार रोया अकेला पड़ जाने पर

[76] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, पहाड़ पर लालटेन, पृष्ठ 65**

[77] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, अत्याचारियों की थकान, पृष्ठ 66**

पत्थरों पर कितनी बार गिरा

और उठकर चल दिया घर की तरफ़

एक-एक कर सारे सपने उसे याद थे

जिनमें बच्चे ही बच्चे दिखते थें"[78]

प्रकृति के सुंदर व सुबह के मनोहारी रूप का चित्रण करने के लिए भी कवि ने बच्चों को माध्यम बनाया है। उन्हें अनेक प्रकार के प्राकृतिक उपादानों से सजाकर हमारे सामने इस तरह प्रस्तुत किया है-

"एक जैसे कपड़ों में सजे सभी बच्चे

गहरे या कुछ कम गहरे आसमानी कुछ सलेटी कुछ कत्थई

उनके चेहरे सुबह या शाम या दोपहर के रंग के

कहीं जरा-सा लाल हरा या नीला बंधा हुआ

छोटे-छोटे बादलों जैसे बच्चे इस तरह उछलते हुए आये

जैसे उन्हीं के कारण हो रही हो यह आश्चर्यजनक सुबह।"[79]

प्रातः होते ही बच्चे सड़कों पर खेल रहे हैं। बच्चों एवं उस प्रातः कालीन सौन्दर्य का सुन्दर चित्रण कवि ने किया है। सुबह होते ही बच्चें सड़क पर आ जाते हैं। उन बच्चों को कवि ने छोटे-छोटे बादलों की भाँति उछलते हुए दिखाया है, जैसे आज की सुबह उन्हीं के लिए है। इस प्रकार कवि ने बच्चों की हर स्थिति को अपनी कविताओं में चित्रित किया है।

बच्चों के प्रति मंगलेश डबराल के काव्य में गहरी संवेदना देखने को मिलती है। जीवन के प्रति भी उनकी गहरी आस्था है। वे जीवन को एक उत्सव के रूप में मानते हैं और उसी जीवन रूपी उत्सव में बच्चों को हँसी के समान बताया है जो चारों ओर फैलकर जीवन को और भी आनन्दित कर देते हैं। जीवन के हर पहलू में बच्चों की महत्ता एवं व्यापकता को चित्रित करते हुए वे लिखते हैं -

---

[78] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, बच्चा, पृष्ठ 22**

[79] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, सुबह की सड़क पर, पृष्ठ 56**

"प्यारे बच्चो

जीवन एक उत्सव है जिसमें

तुम हँसी की तरह फैले हो।

जीवन एक हरा पेड़ है

जिस पर तुम चिड़ियों की तरह

फड़फड़ाते हो

जैसा कि कुछ कवियों ने कहा है

जीवन एक उछलती गेंद है और तुम

उसके चारों ओर एकत्र पैरों की तरह हो।"[80]

कवि का कोमल मन, बालमन की चेष्टाओं को भली-भांति समझता है। कवि उन ग़रीब असहाय बच्चों की पीड़ा को समझता है जिनका बचपन खिलौनों से वंचित है। असहाय और लाचार बच्चों की इस बुरी अवस्था को देखकर कवि के मन में उनके प्रति संवेदना के साथ-साथ शोषकों के प्रति आक्रोश भी पनपता है। वे कहते हैं -

"कोई और ही दुनिया है

खिलौनों की सजी हुई

किसी और ही दुनिया के बच्चे

बढ़ाते हैं उनकी ओर हाथ।"[81]

समाज के विकास में सामाजिक विद्रुपताएँ ही बाधा नहीं पहुँचाती बल्कि बच्चों की बुरी अवस्था भी एक चुनौती बनकर सामने आती है। मंगलेश डबराल ने चीजों के लिए तरसते बच्चों की स्थिति से हमें अवगत कराया है। वे बताते हैं कि पैदल चलकर स्कूल जाने वाले बच्चों के पास दूसरे अमीर बच्चों के समान खेलने के लिए खिलौने, पहनने के लिए जूते व अन्य दूसरी वस्तुएँ नहीं है। ग़रीब बच्चों के साफ़-सुथरे कपड़े न होने के कारण, उनकी दीन-हीन दशा के कारण उन्हें

[80] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, बच्चों के लिए एक चिट्ठी, पृष्ठ 30-31**

[81] **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, खिलौने, पृष्ठ 72**

किसी भी कार्य या समारोह में प्राथमिकता नहीं दी जाती। बच्चों की इसी पीड़ा एवं भयावह स्थिति का चित्रण करते हुए कवि लिखते हैं -

"पैदल बच्चों के पास छिपाने के लिए कुछ नहीं है
किताबों के बीच तितलियाँ नहीं
जूते भी नहीं जिन्हें वे रख सकें
झाड़ी के पीछे
कई बार उन्हें हिदायत दी गयी है
जूते पहनकर आने की
हाथ-पैर के नाखुन कलात्मक काटने की
कई बार पड़ी हैं बेंत
और कहा गया है कि हम तुम्हें नहीं ले जायेंगे
महापुरुषों की आगवानी में।"[82]

फ़िल्म में चित्रित दृश्यों के माध्यम से मंगलेश डबराल हमें बताना चाहते हैं कि एक ग़रीब, असहाय, आहत बच्चे से जब फिल्मकार पूछता है कि तुम उस दृश्य को याद करके हमें बताओ जब अत्याचारियों ने भीषण मारकाट की थी। उस असह्य दुख को सहन करता हुआ बच्चा अपनी पीड़ा व्यक्त करता है। उसकी इस स्थिति को मंगलेश डबराल ने अपनी कविता 'प्रायोजित व्यापार' में इस प्रकार दर्शाया है -

"फ़िल्मकार ने पूछा याद करो वह दृश्य
कि जब दुश्मन ने घर में नरसंहार किया

[82] **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, पैदल बच्चे स्कूल, पृष्ठ 31**

दुख का भार उठाते बच्चे ने बतलाया कैसे

अत्याचारी ने हँसते-हँसते वार किया।"[83]

बच्चों की मानसिकता को मंगलेश डबराल भली-भांति समझते हैं। छोटे-छोटे बच्चे सड़कों पर पंतग उड़ाते हुए घूम रहे हैं और वे अपनी पतंगों को घर ले जाकर उसकी धूल, ओंस को साफ़ कर रहे हैं। इस तरह के दृश्यों का वर्णन करने से यह स्पष्ट होता है कि मंगलेश डबराल बच्चों की कोमल भावनाओं से जुड़े हुए कवि हैं। वे लिखते हैं -

"एक बच्चा सड़क पर

पतंग ले जाता होगा, अपने घर

उसकी ओंस पोंछता हुआ।"[84]

अतः हम कह सकते हैं कि मंगलेश डबराल के साहित्य में शिशु विषयक संवेदना उच्चतम रूप में प्रकट हुई है। वे बच्चों के कोमल मन को समझते हैं। उनकी पीड़ा को वे अपने काव्य के माध्यम से अभिव्यक्ति देते हैं। वे कहते हैं कि बच्चों को देखकर मन में एक नई उमंग भर जाती है। बच्चों को देखते ही इंसान अपना सुख-दुख भूल जाता है और उसका दोस्त बन जाता है। इस प्रकार बच्चों के सुख-दुख, खिलौनों के अभाव में बीतता उनका बचपन और गरीबी से उत्पन्न पीड़ा को मंगलेश डबराल ने अपने साहित्य में मुखरित किया है।

परिवार संबंधित चिंतन

मंगलेश डबराल के काव्य में परिवार व पारिवारिक संबंधों की विशद चर्चा हुई है। उनके काव्य में यह परिवार बार-बार आता है। 'बारिश' कविता में उन्होंने समग्र परिवार का एक साथ दृश्य उपस्थित किया है-

[83] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, प्रायोजित व्यापार, पृष्ठ 77**

[84] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, खिड़की, पृष्ठ 71**

"एक रात मैं घर लौटा जब बारिश थी,

पिता इंतजार करते थे, माँ व्याकुल थी,

बहनें दूर से एक साथ दौड़ी चली आयी थीं,

बारिश में हम सिमटकर पास-पास बैठ गये।"[85]

कवि की कविताओं में संबंधों की दुनिया का मानवीय चेहरा उपस्थित है, जहाँ तमाम अनुभवों के साथ बूढ़े पिता है, उदास माँ है, संघर्ष में साथ देने वाली पत्नी भी है, स्कूल जाते बच्चे भी हैं और इन आत्मीय लोगों के बीच हत्यारे भी है। कवि मंगलेश कविता के मानवीय पहलू से जुड़े हैं। 'हम जो देखते हैं' कविता संग्रह में मंगलेश की कविताएं युगीन परिवेश से कटे बिना पारिवारिक संदर्भों से जुड़ गयी है। 'दादा की तस्वीर', 'पिता की तस्वीर', 'अपनी तस्वीर', 'पिता की स्मृति में आदि कविताओं को उदाहरण के रूप में ले सकते हैं।

समाज में मनुष्य के सपने टूट रहे हैं। डरते हुए काम करना उसकी घुटन भरी जिंदगी को दर्शाता है। मनुष्य के स्वप्नों में बदलाव को आत्म रूप से स्वीकारा गया है जो मंगलेश जी की अलग-अलग कविताओं में विभिन्न परिस्थितियों की ओर जाता है। विनय विश्वास ने मंगलेश डबराल के बारे में कहा है- "कवि ने समकालीन विकास की नकारात्मकता पर भरपूर टिप्पणी की है। मनुष्यता की उस पूँजी को संभाले रखने, बचाने का संघर्ष है, जिसे विकास लूट रहा है। यह बची रही तो कविता की जगह भी बची रहेगी।"[86]

माँ के बारे में वे अपनी 'चेहरा' कविता में बताते हैं-

"माँ मुझे पहचान नहीं पायी

जब मैं घर लौटा

सर से पैर तक धूल से सना हुआ

माँ ने धूल पोंछी

[85] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, बारिश, पृष्ठ 22**

[86] **विश्वास विनय, आज की कविता, पृष्ठ 58**

उसके नीचे कीचड़ जो

सूखकर सख़्त हो गया था साफ़ किया।"[87]

इसी के साथ-साथ मंगलेश डबराल 'पिता' कविता में अपने पिता को याद करते हैं जैसे-

"बूढ़े हो गये हैं पिता

बहुत बूढ़े हो गये पिता

अगर वे दाढी उगाते

तो वह होती चमकीली सफेद

लंबी लहराती

दिव्य

पुरुष जैसी

कुछ बच्चे भी होते दाढ़ी पकड़

झूला झूलते ।"[88]

एक पिता का अपने परिवार तथा परिवार वालों के प्रति जो कर्त्तव्य होता है वो अपने आप में असाधारण होता है। पिता सोचते हैं कि मेरे बाद घर का क्या होगा? यह विचार पिता को एकदम कंपायमान कर देता है। जब परिवार के सारे सदस्य रात को गहरी नींद में सो जाते हैं तब पिता रात भर जागते रहते हैं। इस दृश्य का बड़े ही मनोहारी ढंग से मंगलेश जी ने अपनी कविता 'घर' में चित्रण किया है-

"पिता डाकखाने में चिट्ठी का

इंतज़ार करके

लौटते है हाथ-पाँव में

---

[87] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, चेहरा, पृष्ठ 55**

[88] **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, पिता, पृष्ठ 40**

दर्द की शिकायत के साथ

रात में जब घर काँपता है

पिता सोचते हैं जब मैं नहीं हूँगा,

क्या होगा इस घर का।"[89]

मंगलेश डबराल की कविताओं में पिता, माँ, बच्चें, बचपन, सपने आदि स्थायी उपकरण है। 'पिता की तस्वीर' कविता में वे पिता का आत्मीयतापूर्ण वर्णन करते हुए लिखते हैं-

"उनकी आँखों में कोई पारदर्शी चीज

साफ़ चमकती है

वह अच्छाई, है या साहस

तस्वीर में पिता खाँसते नहीं

व्याकुल नहीं होते

उनके हाथ-पैर में दर्द नहीं होता।

वे झुकते नहीं समझौता नहीं करते।"[90]

कवि 'दादा की तस्वीर', 'पिता की तस्वीर', और 'अपनी तस्वीर' नामक कविताओं के ज़रिये एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी में श्रेष्ठ मानवीय गुणों की उपस्थिति के बारे में बता रहे हैं, जो दादा के बाद अपनी पीढी के लोगों में लगातार कम होती जा रही है। इन कविताओं के माध्यम से वे पुरानी पीढ़ी के गुणों और मूल्यों को काव्य-स्तर पर लाना चाहते हैं। अनकी कविताएँ संबंधों को समय और समाज के संदर्भ में नई संवेदनाओं से जोड़ती है। उनकी कविताओं में आत्मीय अनुभवों का यथार्थ है।

---

[89] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, घर, पृष्ठ 20**

[90] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, पिता की तस्वीर, पृष्ठ 65**

वे आगे कहते हैं कि पिता जब थक जाते हैं तो उन्हें अपने बेटे के सहारे की आवश्यकता होने लगती है। अपने विदेश में गए हुए बेटे के वापिस लौटने की प्रतीक्षा एक पिता को अपने अंतिम दिनों में होती है। अपने बेटे को याद करते हुए पिता का वर्णन उन्होंने ने इस प्रकार किया है-

"अँधेरे में पिता माँगते हैं थोड़ी-सी उम्मीद,
परदेश गये बेटे के लौटने की।"[91]

'घर का रास्ता' संग्रह की ज़्यादा से ज़्यादा कविताओं में 'पिता' बार-बार आते हैं। वे कभी अँधेरे में माचिस की तीली बराबर रोशनी माँगते हैं तो कभी अपनी पीठ खुजलाने में असमर्थ होने पर किसी ओर से पीठ खुजलाने का आग्रह करते हुए नज़र आते हैं। कविताओं में चित्रित रिश्ते केवल याद करने के लिए नहीं बने हैं बल्कि इन कविताओं में बूढ़े पिता की कठिन जिंदगी का मार्मिक चित्रण है जो जिंदगी के कठिन मुकाम पर अपनी जिंदगी से माचिस की तीली भर रोशनी की मदद माँगते हैं ताकि वे जीवन-संघर्षों से जूझ सके-

"सामने नंगे पहाड़ पर
जैसे ही चाँद चमकता है
अँधेरे में पिता माँगते हैं थोड़ी-सी मदद
माचिस की तीली बराबर रोशनी।"[92]

समकालीन कविता पारिवारिक संबंधों के टूटन की चर्चा करती है, परन्तु एक स्थिति ऐसी आती है जब मनुष्य पुनः उन आदर्शों की ओर लौटना चाहता है, उन रिश्तों को निभाना चाहता है, जहाँ से उसने जीना सीखा। मंगलेश डबराल के साहित्य में इन्हीं परम्पराओं को निभाने व जीवित रखने का प्रयास किया गया है।

---

[91] डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, शुरुआत, पृष्ठ 37
[92] डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, शुरुआत, पृष्ठ 36

स्त्री की स्थिति

मंगलेश डबराल की स्त्री जाति के प्रति गहरी आस्था है। वे उनके भीतर छिपे हुए दुःखों को बहुत करुणा की आवाज से पुकारते हैं। 'लड़की और अंधा आदमी', 'तारे के प्रकाश की तरह', 'तुम्हारे भीतर' और 'स्त्रियाँ' आदि ऐसी ही कविताएं हैं जिनमें भारतीय स्त्री की संघर्ष भरी कहानी तथा उसकी जीवन शक्ति को पकड़ने का सार्थक प्रयास किया गया है। मंगलेश डबराल 'तारे के प्रकाश की तरह' नामक कविता में स्त्री देह को लेकर घर की परिकल्पना ऐसे करते हैं-

"स्त्री का देह उसका घर है
वह बिखरी हुई चीजों को सहेजती है
तस्वीरों और दीवारों की धूल साफ करती है
कपड़े तहाकर रख देती है
वह अपने भीतर थामे हुए रहती है टूटते पहाड़ों
बिफरती नदियों और ढहते सौर मंडलों को
वह कुछ कहती है या सर झुकाये हँसती है
या उसके आँसु कुछ देर फर्श पर चमकते हैं
ये सब उदाहरण है कि वह किस तरह बचाने में जुटी है।"[93]

'आवाज़ भी एक जगह है' संग्रह में स्त्रियाँ और उनकी क्रियाविधियों पर कुछ कविताएँ हैं। डॉ० विद्यावती जी. राजपूत लिखती हैं कि "फेल्लानी की फिल्मों को देखने के बाद मंगलेश ने स्त्रियों का जो चित्र खींचा है उसे देखकर ऐसा लगता है कि कुछ पुरुषों के लिए स्त्रियाँ किसी तरह मखौल का विषय बनी हुई है जबकि स्त्रियाँ अपनी स्वाभाविकता, सहजता के साथ कोई मर्म की बात कहना चाहती हैं।"[94]

---

[93] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह हैं, तारे के प्रकाश की तरह, पृष्ठ 69**

[94] **राजपूत (डॉ.) विद्यावती जी., मंगलेश डबराल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ 53**

कवि अपनी कविताओं में स्त्री मन की स्वाभाविकताओं को उजागर करते हैं। मंगलेश स्त्री मन के मर्म को जो भले ही धीमी गति में प्रकट होता है, उसे सुनते हैं, उसके होने के एहसास को समाज की मुख्यधारा से जोड़ना चाहते हैं। वे इस यथार्थ को जानते हैं कि-

"प्रेम करने के अपराध में
उन्हें अच्छी तरह भुला दिया जा चुका होता है
तब कहीं से आती है उनके होने की आवाज
उनका कोई प्रिय गीत अचानक सुनाई दे जाता है,
वे धीमी कोमल आवाज में कुछ कहती दिखती है।"[95]

मंगलेश डबराल की कविताओं में नारी की समस्याओं को मूर्तरूप देने की कोशिश की गई है। समाज में सर्वाधिक शोषण का शिकार नारी ही होती है। नारी उत्पीड़न तथा यातनामयी जीवन का ज्वलंत चित्रण उनकी कविता 'अगले दिन' में हुआ है। इसमें बलात्कार की शिकार हुई औरत का चित्रण किया गया है। प्रेम करने वाली स्त्री कवि के हृदय में संवेदना भर देती है। प्रिय लहरों के स्थान पर दर्दनाक चीख ही सुनाई देती है। जहाँ शालीनता सिहरती हुई आतंकित चेहरे वाली महिला है, जहाँ पर झड़े हुए पत्ते हैं, लुटी हुई देह है। जैसे-

"अगले दिन उसके भीतर
कितने झड़े हुए कितने पत्ते
अगले दिन मिलेगी खुरों की छाप
अगले दिन अपनी देह लगेगी बेकार
आत्मा हो जाएगी असमर्थ

[95] डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, स्त्रियाँ, पृष्ठ 19

कितने कीचड़ कितने खून से भरी

रात होगी उसके भीतर अगले दिन।"[96]

मंगलेश डबराल के साहित्य में नारी-विषयक गहरे चिन्तन समाए हुए हैं। उन्होंने अपनी 'संरचना' कविता में नारी को 'धरित्री' तथा जीवन का मूलाधार बताया है। लेकिन इस कविता में नारी की दयनीय स्थिति स्वतः उभर कर हमारे सामने आ जाती है, जैसे -

"मैं कहना चाहता था तुम पृथ्वी हो

तुम में शुरू होता है जीवन,

होता है जीवन, तुम में ख़त्म ।

उसने कहा मुझे मालूम है भविष्य

मैं रोज देखती हूँ अपने हाथ-पैर

जहाँ से चढ़कर आता है अंधकार ।"[97]

पुरुष प्रधान भारतीय समाज में नारी को भोग्या बनाकर, उसकी पवित्रता का आदर्श रखकर पतिव्रत धर्म का उपदेश देकर समाज ने उसे खूब छला है, उसका शोषण किया है। मंगलेश डबराल ने अपनी रचनाओं में ऐसी स्त्री का वर्णन किया है जो अपने जीवन में बार-बार छलकपट का शिकार होने के बावजूद भी अपने पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह करती है और अंततः प्रेम में बसा हुआ घर चाहती है। इसका उदाहरण मंगलेश अपनी कविता में प्रस्तुत करते हैं -

"एक आँख से हँसती एक से रोती हुई

वह फिर से आ पहुँचती है पुरुष के सामने

---

[96] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, अगले दिन, पृष्ठ 18**

[97] **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, संरचना, पृष्ठ 25**

जैसे उसका कुछ न छीना गया हो

जैसे वह उसी तरह करती आ रही हो प्रेम ।"[98]

उनकी कविता 'कॉलगर्ल' वैश्यावृत्ति में ढकेली गई स्त्रियों की करुणा को दर्शाती है। गुजरात के वाडिया गांव में तो बेटियां पैदा होने पर जश्न मनाया जाता है क्योंकि उनको वैश्यावृत्ति की प्रथा को आगे बढ़ाने के लिए बेटियों की ज़रूरत होती है।[99]

प्रसिद्ध उर्दू कथाशिल्पी सआदत हसन मंटो जिन्होंने वेश्याओं पर कई कहानियां लिखीं, उनका कथन है - "वेश्या पैदा नहीं होती, बनाई जाती है, या ख़ुद बनती है।"[100]

मंगलेश डबराल भी अपनी कविता में इस विषय को लेकर कई सवाल उठाते हैं -

"उन लड़कियों की कहानी भी किसे मालूम है

जो रोज़ दिखती हैं सड़कों नुकड्डों पर अपनी घबराहट छिपाती हुई

xxxxxxxx

और जो पकड़ में आती हैं, क्या वे सचमुच कॉलगर्ल होती हैं?

यह उनके अलावा कोई नहीं जान सकता"

इन पंक्तियों में कई प्रश्न छिपे हैं। कोई लड़की वैश्या क्यों बनती है और जो इस इल्ज़ाम में अक्सर पकड़ी जाती हैं, क्या वे सचमुच कॉलगर्ल होती हैं? मंगलेश डबराल ने स्त्रियों के मन को भीतर से समझने का प्रयास अपनी कविताओं के माध्यम से किया है।

---

[98] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, स्त्रियाँ, पृष्ठ 18-19**

[99] **भट्ट चिरंतना, वैश्यावृत्ति कराने के लिए बेटियों के जन्म पर जश्न,** https://www.bbc.com/hindi/social-37703696

[100] **मंटो सआदत हसन, समाज और वैश्या का रिश्ता,** https://www.rekhta.org/quotes/samaaj-aur-vaishya-ka-rishta-saadat-hasan-manto-quotes?lang=hi

व्यक्ति केन्द्रित चिंतन

मनुष्य एक बुद्धिशील प्राणी है और उसका बुद्धिशील होना उसे पशुओं से पृथक करने वाली सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। यदि मनुष्य बुद्धिशील न होता तो वह संसार के अन्य पशुओं की तरह होता, बुद्धि के कारण ही वह अपने भय को सुरक्षा में, घृणा को प्रेम में, वैयक्तिकता को सामाजिकता में बदलने और मनुष्यता की नींव स्थापित करने में सक्षम हुआ है।

स्वच्छन्द रूप से जन्म लेने वाला व्यक्ति स्वयं को अनेक सामाजिक बंधनों में आबद्ध पाता है। सार्त्र आदि ने इसे मानव नियति कहा है। यद्यपि ये बंधन समाज को व्यवस्था प्रदान करते हैं और मानव व्यक्तित्व के विकास में इस समाज - व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण योगदान भी स्वीकार किया गया है। वस्तुतः व्यक्ति और समाज दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। परन्तु परम्परागत सामाजिक विचारधारा के संदर्भ में आदर्शवादी और आंगिक सिद्धान्त के समर्थकों ने समाज को लक्ष्य या उद्देश्य मानते हुए, व्यक्ति को निमित्त मात्र स्वीकार किया है। वे व्यक्ति को सामाजिक परिवेश से भिन्न ग्रहण नहीं कर पाते। समाज से पृथक व्यक्ति स्वातंत्र्य में उनका विश्वास नहीं है । इस दृष्टि में समाज सर्वोपरि है। समाज में रहते हुए वह अपना विकास करता है, जिससे उसमें आत्मभाव जागृत हो जाता है और वह जीव (मनुष्य) से व्यक्ति में परिणत हो जाता है।

मनुष्य हर नयी परिस्थिति के अनुसार अपने व्यवहार में परिवर्तन कर लेता है इसलिए मानव समाज में भी परिवर्तन होते रहते हैं। वह अपनी आवश्यकता हर पीढ़ी में नये प्रकार से करता है अन्यथा वह अभी तक अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही रहता।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि व्यक्ति समाज की एक महत्त्वपूर्ण इकाई है। मनुष्यों से मिलकर समाज का निर्माण होता है और समाज में रहकर ही वह अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर सकता है। व्यक्ति में उसके पूर्ण मानव की प्रतिष्ठा करना ही समाज और राज्य का उद्देश्य है। मनुष्य में पूर्ण मानव की प्रतिष्ठा तभी हो सकती है जबकि उसके जीवन यापन की दशाओं में परिवर्तन किया जाए। इसी आधार पर हम यह कह सकते हैं कि व्यक्ति साहित्य का मूल तत्व है।

डॉ. जयप्रकाश शर्मा समकालीन कविता के बारे में लिखते हैं- "समकालीन कविता में इन विषमतापूर्ण स्थितियों का केवल जड़ अंकन नही है। जागरुक समकालीन कवि यह भी इंगित करता है कि जात-पाँत के भेद-भाव के साथ ही इस

विषमता के मूल में 'अधिकारों के दुरुपयोग की शक्ति' है, हमें आदमी के भीतर बैठी 'उस शक्ति' से लड़ना होगा। वह शक्ति धन-बल, सत्ता, बाहुबल कुछ भी हो सकता है।"[101]

आज व्यक्ति जीवन के चारों ओर भ्रम, निराशा, अनास्था, अंधविश्वास, अकेलापन, संत्रास आदि समस्याएं दिखाई देती हैं। मंगलेश डबराल ने अपने साहित्य के माध्यम से व्यक्ति को महत्त्व देते हुए और उसके अस्तित्व को केंद्र में रखते हुए उनके हर अच्छे-बुरे रूप को चित्रित किया है।

मानव मन को अपने वश में करने वाली बुराईयों जैसे- घृणा, झूठ, मूर्खता, धूर्त्तता, पाखण्ड, क्रूरता आदि मनोरोगों का वर्णन मंगलेश डबराल ने अपनी कविता 'खुशी कैसा दुर्भाग्य' के माध्यम से किया है। इन सभी बुराईयों का मानवीकरण करके कवि हमें इनसे अवगत करवाना चाहते हैं। क्रूरता का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं-

"क्रूरता तुम किस शान से टहलती हो अपनी खूनी पोशाक में
मनोरोग तुम फैलते जाते हो सेहत के नाम पर
खुशी कैसा दुर्भाग्य
तुम रहती हो इन सबके साथ।"[102]

अकेलापन मन की वह स्थिति होती है जिसमें व्यक्ति परिवेश से, समाज से कटता हुआ परायेपन का शिकार होता है। अकेलापन व्यक्ति विशेष की सामूहिक प्रगति पर अभिशाप बन जाता है। अकेलापन ग्रामीण जिंदगी की अपेक्षा शहरी जिंदगी में अधिक विद्यमान है। इसी अकेलेपन को मंगलेश डबराल ने अपनी कविता 'आयोजन' में दिखाया है-

"इन दिनों हर कोई जल्दी में है
लोग थोड़ी-थोड़ी देर के लिए झलकते है अकेले पीते
हुए

[101] शर्मा (डॉ) जयप्रकाश , समकालीन हिन्दी काव्य : दशा और दिशा, पृष्ठ 62

[102] डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, खुशी कैसा दुर्भाग्य, पृष्ठ 88

धुँधले आकारों जैसे वे एक-दूसरे की तरफ आते हैं

उनके हाथ में होता है वहीं अकेलेपन का गिलास"[103]

भौतिक सुख-सुविधाओं के पीछे भागते-भागते मनुष्य इतना दूर निकल जाता है कि उसे समाज के बारे में कोई परवाह ही नहीं होती। वह केवल आत्मकेन्द्रित हो जाता है। किसी भी तरह सुखों को प्राप्त करना चाहता है, लेकिन भौतिक ऐश्वर्य की प्राप्ति के बाद उसे जब कभी समाज व अपने परिवार की याद आती है तो वह अपने-आपको अकेला महसूस करता है। वह सोचता है-

"एक अकेलापन है जिसकी याद किसी और

अकेलेपन में आती है।"[104]

सामाजिक विसंगतियों के कारण व्यक्ति के मन में अपनेआप अनास्था का प्रवेश हो जाता है तो कभी-कभी जीवन के प्रति आस्थावादी स्वर भी पैदा हो जाता है। मंगलेश डबराल संघर्षों के बीच पिसकर हार मानने वाले नहीं है बल्कि वे जीवन के प्रति आशावान होकर आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हुए लिखते हैं-

"मैं अपनी उदासी के लिए

क्षमा नहीं मांगना चाहता था

मैं नहीं चाहता था मामूली

इच्छाओं को चेहरे पर ले आना

मैं भूल नहीं जाना चाहता था

अपने घर का रास्ता।"[105]

---

[103] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, आयोजन, पृष्ठ 87**

[104] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, दृश्य, पृष्ठ 10**

[105] **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, घर का रास्ता, पृष्ठ 75**

मंगलेश डबराल कहते हैं कि हमारी व्यवस्था ही हमें पागल बना देती है। अगर हम प्रयास करें तो इस जीर्ण-शीर्ण व्यवस्था को बदला जा सकता है। मंगलेश अक्सर चीजों को और नियमों को उलट-पलट कर देखते हैं जिसके कारण उसके अन्दर छिपे रहस्य खुल जाते हैं। अपनी कविता में वे चित्रित करते हैं कि जब मनुष्य नियमों को तोड़कर कोई कार्य करता है तो उसकी स्थिति विचित्र अर्थात् एक पागल की भांति हो जाती है। मंगलेश की काव्य की दुनिया बहुत विस्तृत है इसलिए उनकी संवेदना चारों ओर फैली हुई है। हम उनकी कविताओं 'पागल' और 'खुशी कैसा दुर्भाग्य' में इस चित्रण को देख सकते हैं। अभिशप्त किस्म के चरित्रों, उपेक्षितों और अलक्षित रहने वाले अभागों के प्रति संवेदना जगाते हुए मंगलेश लिखते हैं-

"तरह-तरह के इशारे करते
पागलो के बीच से
अक्सर गुजरते हैं स्वस्थ मस्तिष्क के लोग
उनकी आँखों में थोड़ा-सा झाँककर
एकाएक सहमते हुए आगे बढ़ जाते हैं
जैसे झटक देते हों अपने जीवन का कोई अंश
अपना कोई क्रोध कोई प्रेम कोई विरोध
अपनी ही कोई आग
जो उनसे अलग होकर अब भटकती है
व्यस्त चौराहों और नुक्कड़ों पर
कपड़े फाड़े बाल बिखराये सूखी रोटियाँ संभाले हुए।"[106]

मंगलेश डबराल को करुणा और अवसाद का कवि माना जाता है जिसके कारण उनकी अधिकतर कविताएँ एक उदासी से भरे हुए और अकेलेपन के कारण बुरी तरह टूटे हुए व्यक्ति की कविताएँ हैं। अकेलेपन के कारण इस सामाजिक लड़ाई

[106] **डबराल मंगलेश, आवाज भी एक जगह है, पागलों का एक वर्णन, पृष्ठ 22**

में कुछ भी परिवर्तन न करने के कारण दुख में डूबे हुए व्यक्ति को उन्होने अपनी कविताओं में चित्रित किया है। उनकी 'थकान' कविता इस दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण है -

"शाम को सारी दुनिया झाड़कर

बिस्तर पर

औंधा होकर अंत में

क्या बचता है कंधे पर बैठे

दुख के अलावा

आत्मा पर फफूंद के अलाव क्या बचता है

अंत में।"[107]

अपनी कविताओं के माध्यम से कवि मानव को समझाते हुए कहते हैं कि निराश होकर अपने हाथों को बाँधकर जीवन जीना उचित नहीं है बल्कि हमें उस निराशा को दूर करने के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए। हमें इस भयावहता के माहौल में भी उम्मीद नहीं त्यागनी चाहिए बल्कि इसको दूर करने के लिए सतत् संघर्षरत रहना चाहिए। वे लिखते हैं-

"उठो और चल दो

हम जानते हैं

धुआँ खून और चीख बहुत पहले से मौजूद है

इन सबकी छाप है हमारे विचारों पर

अपने विचारों से ज्यादा दूर नहीं गये हैं हम।"[108]

अतः स्पष्ट है कि हम व्यक्ति केंद्रित तथा व्यक्ति मन से संबंधित कविताएं मंगलेश डबराल के साहित्य में देख सकते हैं। उन्होंने मानवीय जीवन के हर पहलू का बड़ी पैनी नज़र से विश्लेषण किया है।

---

[107] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, थकान, पृष्ठ 35**

[108] **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, दिनचर्या, पृष्ठ 61**

समाज से जुड़े अन्य प्रश्न

मंगलेश डबराल गाँव की, समाज की और देश की रोजमर्रा की समस्याओं से भली-भाँति परिचित है। इसलिए उनकी कविता यथार्थ तथा मौलिक है। उनमें सहजता है । वे समाज की चेतना को आवाज़ देने वाले कवि हैं। इसलिए उनकी कविताओं में हम समाज का यथार्थ चित्रण देख सकते हैं। उन्होंने समाज के भूखे बच्चों, स्त्री की विचित्र दशा, पहाड़ी वातावरण, बूढ़ों की दशा इत्यादि को चित्रित किया है।

कवि मंगलेश ने अपने साहित्य में सामाजिक समस्याओं से हमें रू-ब-रू करवाया। इन समस्याओं में से एक समस्या है - भिक्षावृत्ति । भिक्षावृत्ति ने समाज के विकास में बड़ी बाधा पहुँचायी है। इसका वर्णन उन्होंने अपनी एक कविता 'गाता हुआ लड़का' में किया है। जैसे-

"बारह-तेरह बरस का लड़का
भीड़ भरी बस में गाता था एक खुशी का मीठा गाना
गले में नन्हा हार्मोनियम लटकाये
उसकी चारेक बरस की बहन मांगती थी पैसा
मुसाफ़िरों से घूम-घूमकर[109]

इनकी लेखनी में अद्भुत शक्ति है। पहाड़ी औरतों का जंगल में लकड़ी के गट्ठों का ढोना, बूढ़ों का नंगे पैर चलना, दूर तक पहाड़ पर लालटेन का नज़र आना इत्यादि दृश्यों का सजीव चित्रण करते हुए लिखते हैं-

"जंगल में औरते हैं
लकड़ियों के गट्ठर के नीचे बेहोश
जंगल में बच्चे हैं
असमय दफ़नाये जाते हुए
जंगल में नंगे पैर चलते बूढ़े हैं

[109] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, गाता हुआ लड़का, पृष्ठ 60**

डरते-खाँसते अंत में ग़ायब हो जाते हुए

जंगल में लगातार कुल्हाडियाँ चल रही है

जंगल में सोया है रक्त।"[110]

सामाजिक बुराईयों ने हमारे समाज को इतनी बुरी तरह जकड़ लिया है कि अत्याचार, भुखमरी, बेरोज़गारी, भिक्षावृत्ति, ग़रीबी आदि जैसी समस्याएं बढ़ती ही जा ररही हैं। कवि मंगलेश डबराल बेरोज़गारी का चित्रण करते हुए कहते हैं-

"क्रेमलिन के चर्च में प्रार्थना में झुका

बेरोजगार कारीगर कहता है

वे फिर से छीन लिए गये

अब वे महंगी कारें चलाते हैं

राहगीरों को लूटते हैं जुआघरों में किस्मत आजमाते हैं

रात्रि क्लबों में नाचती औरतों की पोशाकें नोचते हैं

अपने लिए एक-एक क्रेमलिन बनाने का सपना देखते हैं।"[111]

समाज में तानाशाही के प्रति आक्रोश ज़्यादा रहा है। मंगलेश ने तानाशाह के अहम् भाव को अपनी कविता 'तानाशाह कहता है' में इस प्रकार प्रकट किया है-

"हमारे बिना तुम कुछ नहीं कर सकते

तानाशाह कहता है

तुम उठ नहीं सकते सांस नहीं ले सकते

कहीं आ-जा नहीं सकते

हम न हो तो तुम भी नहीं हो सकते

---

[110] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, पहाड़ पर लालटेन, पृष्ठ 64**

[111] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, क्रेमलिन कथा, पृष्ठ 42**

xxxxxx

जो हमारा नहीं उसकी खैर नहीं

कहकर मुस्कुराता है

xxxxxxx

तुम सिर्फ़ उसके दु:ख के बारे में सोचो

और कुछ करना है, तो इतना करो

कि जब वह मरने लगे

तो खोज लाओ एक नया तानाशाह"[112]

मंगलेश डबराल की इस कविता के बारे में विजय कुमार ने बताया है कि "यह कविता पक्षधरता का ढिंढोरा पीटने वाली किसी भी उग्र और आक्रामक कविता से अधिक व्यवस्था विरोधी है। इसमें जो पैना व्यंग्य है, उसमें सत्ता पर प्रत्यक्ष आक्रमण का सतहीपन नहीं है बल्कि भीतर पैठ कर सत्ता और व्यक्ति के संबंधों की विडम्बना को उजागर किया गया है।"[113]

वे एक समान्य मनुष्य के प्रति भी अपना उदार दृष्टिकोण रखते हुए कहते है -

"एक सरल वाक्य बचाना मेरा उद्देश्य है

मसलन यह कि हम इंसान हैं

मैं चाहता हूँ इस वाक्य की सच्चाई बची रहे

सड़क पर जो नारा सुनाई दे रहा है

वह बचा रहे अपने अर्थ के साथ

मैं चाहता हूँ निराशा बची रहे

जो फिर से एक उम्मीद पैदा करती है अपने लिए

[112] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, तानाशाह कहता है, पृष्ठ 67-68**

[113] **कुमार विजय, साठोत्तरी हिन्दी कविता : परिवर्तित दिशाएं , पृष्ठ 130**

शब्द बचे रहें

जो चिड़ियों की तरह कभी पकड़ में नहीं आते

प्रेम में बचकानापन बना रहे

कवियों में बची रहे थोड़ी लज्जा।"[114]

मंगलेश डबराल की दृष्टि समाज के इर्द-गिर्द घूमती है। उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों को अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से तत्कालीन परिस्थितियों को यथावत् उजागर किया है। उनकी कविताओं में दीन-हीन, प्रताड़ित और शोषित व्यक्तियों की आवाज़ें शामिल हो गई हैं। अब तक समाज के अन्दर भी उनकी कोई आवाजें नहीं थी। इससे कवि की नवीन चेतना ही नहीं बल्कि समाज व समाज के लोगों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता भी स्पष्ट दिखाई दे रही है।

'यथार्थ' के बारे में खुद मंगलेश कहते हैं कि "शायद मेरी रूचि यथार्थ से ज्यादा अनुभव में है जिसे आप छू सकते हैं, गंध, स्वाद और मौसम, उसकी सिहरनों, देह और आत्मा के स्पन्दनों में महसूस कर सकते हैं।"[115]

संघर्ष करना मानव की प्रवृत्ति है और उसी संघर्ष को अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यक्त करना मंगलेश डबराल की एक विशेषता है। मानव को कभी - कभी पारिवारिक बंधनों के लिए तो कभी-कभी आजीविका के लिए संघर्ष करना ही पड़ता है। मंगलेश डबराल ने भी अपने जीवन में काफ़ी संघर्ष किया हैं पर कभी हार नही मानी। उनका अनुभव, उनकी जानकारी ही कविता की ताकत को बढ़ाती है। अपनी 'मुक्ति' कविता में पहाड़ के संघर्षशील व्यक्तियों के साथ वे स्वयं को जोड़ते हैं। उनकी दिनचर्या में मुक्ति के लिए किए गए प्रयासों का साक्षी बनकर उनके बीच होने का एहसास कराते हैं-

"अपने मरे हुए बच्चों की खोज में

मैंने उन्हें एक जंगल से निकलकर

दूसरे जंगल में जाते हुए देखा है

---

[114] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, मैं चाहता हूँ, पृष्ठ 84-85**

[115] **मंगलेश डबराल से ललित कार्तिकेय की बातचीत, आलोचना 2003**

मैंने उन्हें बेशुमार पौधों के तरह

नाचते देखा है

इस रक्त रंजित रेगिस्तान में।"[116]

यहाँ हमारे इस समाज में एक कवि की हैसियत और उसका वैचारिक स्थायित्व भी एकदम स्पष्ट है। विभिन्न प्रलोभनों के झांसे में आकर अपनी पक्षधरता को गँवा देने वाले बुद्धिजीवियों के माहौल में कवि की यह चीख एक बड़े ईमानदार आत्म-संघर्ष की फलश्रुति है -

"हाशिये का कोई केन्द्र नहीं होता

हालाँकि उसके आसपास

कई केन्द्र बिन्दु होते हैं,

जो उसे बार-बार अपनी तरफ खींचते हैं,

जब हाशिया काफी लाचार हो जाता है

तो खींचकर कहता है कि मुझे यहीं छोड़ दो।"[117]

मंगलेश डबराल कहीं पर खुद के ख़िलाफ़ लड़ते हैं तो कहीं पर समाज की उन अमानवीय सत्ताओं के ख़िलाफ़ संघर्ष करते नज़र आते हैं जो समाज में फैले हुए दुख का कारण है। वे देश की उन्नति के लिए शोषण का खुलकर विरोध करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में संघर्ष करना ही पड़ता है जिसका चित्रण करते हुए मंगलेश डबराल लिखते है -

"अपनी भूख देखोजो एक मुस्तैद पंजे में बदल रही है

जंगल से लगातार एक दहाड़ आ रही है

[116] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, मुक्ति, पृष्ठ 70**

[117] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, हाशिये की कविता, पृष्ठ 40**

और इच्छाएँ दाँत पैने कर रही हैं

पत्थरों पर"[118]

जमीन से जुड़े हुए होने के कारण मंगलेश डबराल गाँव, समाज और पत्रकार होने के कारण देश की दैनिक समस्याओं से भली-भांति परिचित थे। उनकी कविताओं में वे समाज में फैली विद्रुपताओं से परिचित करवाते हुए उनका विरोध करते हुए भी नज़र आते हैं।

समकालीन कविता में संस्कृति: एक सामान्य परिचय

'संस्कृति' शब्द संस्कृत की 'कृ' धातु में 'सम्' उपसर्ग और 'क्तिन' प्रत्यय जोड़ने से व्युत्पन्न होता है, जिसका अर्थ है परिष्कार, तैयारी, पूर्णता, मनोविकास[119]

संस्कृति समाज में रहकर मनुष्य द्वारा अर्जित की गई वह प्रक्रिया है, जो दर्शन, धर्म, नैतिकता, सौंदर्य एवं संबंध-योजना के माध्यम से मनुष्य के आचार-विचार को प्रेरित और प्रवृत्त करती है, तथा उन जीवन मूल्यों की स्थापना करती है जो देशगत होते हुए भी सार्वभौम होते हैं। डॉ० देवराज ने संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहा है "संस्कृति उन गुणों का समुदाय है जिन्हें मनुष्य अनेक प्रकार की शिक्षा द्वारा अपने प्रयत्न से प्राप्त कर सकता है। संस्कृति का सम्बन्ध मुख्यतः मानव की बुद्धि, स्वभाव और मनोवृत्तियों से है।"[120]

---

[118] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, पहाड़ पर लालटेन, पृष्ठ 65**

[119] **आप्टे वामन शिवराम (संपादक), संस्कृत हिंदी कोश, पृष्ठ 1348**

[120] **देवराज (डॉ.) भारतीय संस्कृति (महाकाव्यों के आलोक में), पृष्ठ 21**

रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार, "संस्कृति जिंदगी का एक तरीका है और वह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं।"[121] दिनकर रोटी के बाद मनुष्य की सबसे बड़ी कीमती चीज़ उसकी संस्कृति को मानते हैं।[122]

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के अनुसार, "संस्कृति विवेक, बुद्धि के जीवन को भली प्रकार जान लेने का नाम है।"[123]

कवि सुमित्रानंदन पंत संस्कृति को 'मानवीय पदार्थ' मानते हैं जिसके भीतर आध्यात्मिक, धर्म, नीति से लेकर सामाजिक रूढ़ि, रीति तथा व्यवहार का सौंदर्य भी निहित होता है।[124]

डॉ० रामजी उपाध्याय के शब्दों में, "सुंदर बनाने, सुधारने या पूर्ण बनाने का प्रयत्न ही बुद्धि और सौंदर्य भावना के विकास का परिचय देता है। मानव का यही विकास संस्कृति है।"[125]

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि संस्कृति मनुष्य का व्यवहार है। संस्कृति वास्तव में उन विविध गुणों का समुच्चय है जो व्यक्तित्त्व को समृद्ध और परिष्कृत बनाते हैं। "चिन्तन और कलात्मक सृजन की वे क्रियाएँ 'संस्कृति' में आती हैं जो मानव जीवन के लिए प्रत्यक्ष रूप में उपयोगी न दिखाई देने पर भी उसे समृद्ध बनाती हैं। इसमें शास्त्र और दर्शन का चिन्तन, साहित्य, ललित कलाएँ आदि का समावेश होता है।"[126]

अतः इन सभी परिभाषाओं तथा विविध विद्वानों के कथनों से यह बात स्पष्ट होती है कि संस्कृति का व्यक्ति और समाज से गहरा जुड़ाव है।

---

[121] **सिंह रामधारी 'दिनकर', संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 643**

[122] **सिंह रामधारी 'दिनकर', राष्ट्र भाषा और राष्ट्रीय एकता, भारत की सभी भाषाओं की जय हो (भाषण)**

[123] **राधाकृष्णन सर्वपल्ली (विश्वंभरनाथ त्रिपाठी - अनु), स्वतंत्रता और संस्कृति, पृष्ठ 43**

[124] **सुमित्रानन्दन पंत, उत्तरा, पृष्ठ 15**

[125] **डॉ० रामजी उपाध्याय, भारत की प्राचीन संस्कृति, पृष्ठ 2**

[126] **लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय', भारतीय संस्कृति कोश, पृष्ठ 929**

भूमंडलीकरण तथा बाज़ारवाद

मंगलेश डबराल केवल भारत के ही संदर्भ में नहीं बल्कि पूँजीवादी राष्ट्र अमेरिका में बाजारवाद एवं उपभोक्तावाद से उपजे बिखराव, टूटते मानवीय संबंध एवं यांत्रिक होकर विकृत हो जाने की घटना दिखाते हैं। यहाँ कवि पूँजीवादी अमेरिका में बाज़ारवाद से उत्पन्न बिखराव, बिखरते हुए मानवीय संबंधों को दर्शाते हैं। जैसे-

"अमेरिका में रोना मना है
उदास होना मना है
एक बहुत बड़ी आँख सबको देख रही है
पीछे मुड़कर जीवन को देखना मना है
वह किस्सा किसे नहीं मालूम
कि आलीशान दुकान में सामान बेचती
एक दुबली - सी लड़की
जो कुछ
सोचती हुई-सी बैठी थी
एक दिन एक ग्राहक के सामने मुस्कुराना भूल गयी
शाम को उसे नौकरी से अलग कर दिया गया
यह बात जब उसका पति उससे अलग हुआ
उसके एक दिन के बाद की है।"[127]

आज ऐसा समय है जब पूँजीवादी दौर में सभी वस्तुएँ बिकाऊ हो गयी हैं, ऐसे में मनुष्य की मनुष्यता, उसकी आत्मा सबसे सस्ती वस्तुएँ हो गयी हैं-

---

[127] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, अमेरिका में कविता, पृष्ठ 75-76**

"एक ऐसे समय में

जब सब कुछ बिक रहा है

और इस बहुमुखी बिक्री में लोग

एक-दूसरे की नज़रें बचाकर भी

अपने को बिकने से बचा नहीं पा रहे

होड़ जब किसी उत्थान के लिए नहीं

महज एक गिरेपन के लिए है।"

मंगलेश डबराल अपनी कविता 'पागलों का वर्णन' में लिखते हैं -

"हम एक राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय षड्यंत्र के शिकार हैं।"[128]

कवि भूमंडलीकरण संस्कृति में व्याप्त राष्ट्रीय षड्यंत्र की बात करते है। आज बाज़ारीकरण की प्रवृत्ति सर्वत्र दिखाई देती है। उनकी कविता 'बाज़ार' आज के उपभोक्तावादी मूल्यों पर प्रहार करती है। विज्ञापनों की चकाचौंध में मनुष्य अपना विवेक खो रहा है और आज रिश्तों से भी अधिक महत्त्व वस्तुओं का है।

वे बाज़ार की तुलना प्रकृति के परिवर्तनशील प्रवृत्ति से करते हैं जहा रोज़ कुछ न कुछ नया घटित होता है परंतु मनुष्य उससे सीखने की बजाय उसमें डूबता चला जाता है क्योंकि मनुष्य का लालच और ज़रूरतें कभी समाप्त नही होती -

"प्रकृति की तरह बाज़ार भी परिवर्तनशील है

उसका भूगर्भ भी कभी इधर कभी उधर करवटें बदलता है

भूकंप के झटके रोज़ ही यहाँ आते हैं

लेकिन उन्हें महसूस नहीं किया जाता।"[129]

---

[128] डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, पागलों का एक वर्णन, पृष्ठ 23

[129] डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, बाज़ार, पृष्ठ 59

कवि के अनुसार आज का बाज़ार बड़ा बाज़ार है, यह लूट, लालच और भय का बाज़ार है। आज का बाज़ार पहले के बाज़ार से भिन्न है। कारण यह है कि आज भूमंडलीकरण ने पूरी पृथ्वी को ही मंडी बना दिया है। कवि आज भूमंडलीकरण, उपभोक्तावाद, बाज़ारवाद पर आधारित विकृत समाज संवेदनशीलता को एक पागलपन की तरह लेते है-

"पागल होने का कोई नियम नहीं है ।
इसलिए तमाम पागल अपने अद्वितीय तरीके से
पागल होते हैं ।
xxxxxx
वे भूल चुके होते हैं कि पागल होने से
बचे रहने के कोई नियम हैं ।"[130]

कवि आर्थिक उदारीकरण और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उस दौर से हमारा सामना करवाते हैं, जिसकी गिरफ्त में आज हमारा संपूर्ण देश है। मुक्त बाज़ार, उपभोक्तावाद, विज्ञापन, वैश्विक अर्थ व्यवस्था का जगमग मनुष्य को लुभा रहा है। खुद मंगलेश डबराल कहते हैं कि "बदलाव तो बहुत ज़रूरी है। लेकिन उदारीकरण और बाज़ारवाद के चलते जो बदलाव आए है, वे बहुत खतरनाक है और उससे डर लगता है।[131]

बाज़ार, उपभोक्तावाद, शोषण, अत्याचार की इस दुनिया के बीच मंगलेश 'मनुष्यता' को बचाना चाहते हैं। यथा -

"यह ऐसा समय है
जब कोई हो सकता है अंधा लंगडा
बहरा बेघर पागल"[132]

[130] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, पागलों का एक वर्णन, पृष्ठ 21**
[131] **मंगलेश डबराल से ओमनिश्चल की बातचीत - साक्षात्कार अगस्त 2004**
[132] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, ऐसा समय, पृष्ठ 83**

उदारीकरण और बाज़ारवाद के संबंध में खुद मंगलेश डबराल कहते हैं कि हम अमेरिकी सांस्कृतिक आक्रमण के युग में रह रहे हैं जिसके उपकरण हैं - कोका-कोला, हैम्बर्गर, जीन्स और कुलमिलाकर एक जंक लाइफ। उनके अनुसार समाज को एक अत्यंत नकली जीवन शैली अपनाने का स्वप्न दिया जा रहा है जो कि उसकी जीवन पद्धति से उपजी हुई नहीं है।[133]

मंगलेश डबराल कहते हैं कि लेखन की संस्कृति का पारंपरिक अस्तित्व नवीन प्रौद्योगिकी और बाज़ार-व्यवस्था में खतरे में पड़ गयी है। उपभोक्तावाद के विरुद्ध कवि पहले से ही सक्रिय थे, पंरतु आज इस परिदृश्य में अपने लेखक होने और कर्म की सार्थकता को लेकर वे 'कागज़ की कविता' में तनावग्रस्त दिखाई देते है -

"अब हम निश्शब्द हैं
हम नहीं जानते कि क्या करें
हमारे पास कोई रास्ता नहीं बचा
कागज़ों को फाड़ते रहने के सिवा"[134]

भूमंडलीकरण के प्रभाव से मनुष्यों के मूल्यों के साथ सांस्कृतिक पतन भी जगह जगह देखा जा सकता है। जिस प्रकार प्लास्टिक भूमि में जम कर सदियों तक नष्ट नहीं होता और समय के चलते अपने दुष्परिणाम दिखाता है, उसी प्रकार भूमंडलीकरण हमारे समाज में जम चुका है। अपनी सांस्कृतिक पूंजी के कारण विख्यात बनारस जैसा शहर भी अपनी पहचान खो रहा हैं -

"मेरी निगाहों के सामने बदलने लगा था बनारस
भूमंडलीकरण एक प्लास्टिक का नाम था
जो जम रहा था हर जगह,

---

[133] **मंगलेश डबराल से ओमनिश्चल की बातचीत - साक्षात्कार अगस्त 2004**

[134] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, काग़ज़ की कविता, पृष्ठ 32**

यह बनारस बाज़ के ख़ामोश होने का दौर था

कत्थक के थमने और ठुमरी की लय के टूटने का दौर"[135]

लोगों के किए आज के समय में बाज़ार का आकर्षण इतना अधिक बढ़ चुका है कि वे आंतरिक सौन्दर्य और संतुष्टि से भी ज़्यादा बाहरी दिखावे को महत्त्व देने लगे है। लोगों के पास पैसा न होते हुए भी वे बाज़ार की ओर किसी उम्मीद के साथ जाते है। बढ़ते अकेलेपन की स्थिति को देखते हुए इसका अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि यह सचमे 'भूलने का युग'[136] है, जहां मनुष्य अपने परिवार को, अपने घर को, अपने रिश्तों को भूलकर शहर में अकेला रहना भी पसंद करता है क्योंकि "बाज़ार कहता है याद मत करो, अपनी पिछली चीज़ों को, पिछले घर को।"[137] मंगलेश डबराल अपनी कविता 'दो प्रारूप' में भी इस स्थिति का चित्रण करते है -

"लोग किसी चमत्कार की उम्मीद में

घरों से बाज़ारों की ओर जाते हैं

बिना स्मृति के, बिना प्रेम के

जहां सुंदर कपड़ों में लिपटे हुए निष्प्राण मानव-पुतले

उनकी राह देखते एक क़तार में खड़े रहते हैं।"

ग्राम्य एवं नगरीय संस्कृति

मंगलेश डबराल मूलतः उत्तराखंड के पहाड़ी से थे जहां उन्होंने ग्रामीण जीवन और कठिन आर्थिक स्थिति को अत्यंत क़रीब से देखा। 1969 में जब वे घर की आर्थिक तंगी के कारण आजीविका की तलाश में दिल्ली आए, तब वे वहा की नगरीय संस्कृति से भी भली-भांति परिचित हुए। उनकी तमाम रचनाओं की ओर देखने से ज्ञात होता है कि उनकी आँखे

---

[135] **डबराल मंगलेश, स्मृति एक दूसरा समय है, शहनाईयों के बारे में बिस्मिल्लाह ख़ान, पृष्ठ 46**

[136] **डबराल मंगलेश, स्मृति एक दूसरा समय है, भूलने का युग, पृष्ठ 22**

[137] **वहीं, पृष्ठ 23**

समाज के इर्द-गिर्द घूमती थीं। जिस समाज को उन्होंने देखा उसी को अपने साहित्य में व्यक्त किया। जिस समय वे लेखन-कार्य कर रहे थे, उस समय समाज की प्राचीन व्यवस्थाएँ टूट रही थी, नई व्यवस्था जन्म ले रही थी। मंगलेश डबराल की कविता में महानगरीय परिवेश में अपनेपन को बचा लेने की मामूली इच्छा व्यक्त हो रही थी। उन्होंने इस अमानवीय परिवेश के बारे में लिखा है-

"यहाँ आते-जाते मैंने
शहर के बारे में सोचा
जो पालतू सूर्यास्त और सनसनीख़ेज़ ख़बरों से
लौटकर अपने मुखौटे छिपा रहा था
xxxxxxx
कुछ भी बचाया नहीं जा सकता
रात में हम जो सपने देखेंगे
वे भी सुबह यही छूट जायेंगे
बाहर एक सड़क होगी कहीं जाती हुई
एक बस होगी हमें वहाँ ले जाती हुई
एक नौकरी होगी धमकाती काम कराती हुई।"[138]

महानगरों एवं बड़े-बड़े शहरों में तेजी से हो रहे विस्तार और आसमान छूते जमीनों के भावों का नाता प्रायः उच्च वर्ग के लोगों से ही है। रोजी-रोटी की तलाश में जबरन गाँवों से शहर आने वाले ग़रीब के नसीब में तो झुग्गी-झोंपड़ी, अवैध बस्ती या फुटपाथ ही है। महानगरों में शिक्षा व स्वास्थ्य जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति बेहतर होनी चाहिए लेकिन शहरों में आकर भी ग़रीब की स्थिति पहले जैसी ही रहती है। पानी, बिजली, सीवर, सड़क आदि केवल गाँवों की नहीं महानगरों की भी समस्या है। गाँवों से शहरों की ओर पलायन करने वालों में पुरुषों की संख्या अधिक है इसलिए गाँवों में खेती का बोझ महिलाओं एवं बच्चों पर बढ़ता जा रहा है। गाँवों के समान शहरों में भी कई समस्याएँ होती है। आज

[138] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, आते-जाते, पृष्ठ 12**

शहरों में पीने का पानी, गंदगी, स्वास्थ्य सेवाएँ, बिजली, ज़मीन, मकान एवं अन्य सुविधाएँ उपलब्ध नहीं है और है भी तो पर्याप्त नहीं है। अगर वर्तमान इतना दयनीय है तो भविष्य में क्या होगा यह सवाल उठता है।

प्रसिद्ध भारतीय पत्रकार रवीश कुमार ने पिछले साल (अगस्त 2023 में) हिमाचल में बारिश की वजह से हुई तबाही पर बात करते हुए कहा - "हिमाचल प्रदेश दिल्ली से बहुत नज़दीक है मगर दिल्ली के अख़बारों और चैनलों में इसकी तबाही की ख़बरों का हाल देखेंगे तो लगेगा कि चाँद से भी ज़्यादा दूर है हिमाचल। राष्ट्र गान हिमाचल के बिना पूरा नहीं हो सकता लेकिन मीडिया कवरेज देखकर लगता है हिमाचल राष्ट्र में ही नहीं है केवल गान में है। शिमला, कुल्लू, मंडी, हमीरपुर और अन्य ज़िलोंसे आने वाली तस्वीरें भयावह हैं। इंसान ने जिस तरह से पहाड़ों को काट कर मैदान बनाया है, अब पहाड़ उसके अतिक्रमणों को मैदान बनाने में लग गए हैं। ट्विटर पर भूस्खलन के वीडियो बहुत सारे हैं जिसे लोग केवल देख रहे हैं और हैरानी ज़ाहिर कर रहे हैं। यही लोग बारिश खत्म होते ही फिर से इन पहाड़ों में मकान देखने निकल जाएंगे कि खरीद लें और इसकी ज़रूरत पूरी करने के लिए और मकान बनने लग जाएंगे और नियम-कानून को ताक पर रख कर बनाए जाते रहेंगे।"[139]

इस प्रकार कई ख़बरें लगातार पढ़ने और सुनने को मिलती हैं। प्रगति करने के साथ ही हर एक में सही और गलत को पहचानने का विवेक होना चाहिए। आज विश्व में पर्यावरण संकट, अकाल मृत्यु, प्रदूषण, प्राकृतिक आपदाएं, प्रदूषण आदि का संकट मंडरा रहा हैं। कवि मंगलेश डबराल की कविताओं में भी प्रकृति चिंतन बड़ी मात्रा में दिखाई देता है।

आज विश्व भले ही एक 'ग्लोबल गांव' में परिवर्तित हो चुका है मगर मौजूद गांवों के उजड़ने के बाद विश्व को 'ग्लोबल गांव' कहना कहां तक तर्कसंगत है? इसलिए डिजिटल और तकनीकी विकास के साथ-साथ पर्यावरण ज्ञान व इसके प्रति जागरूकता अत्यावश्यक है। महात्मा गांधी ने कहा था कि "प्रकृति के पास मनुष्य की प्रत्येक ज़रूरत को पूरा करने की क्षमता तो है मगर मनुष्य का लालच पूरा करने की क्षमता प्रकृति में भी नहीं है।" इसलिए हमारा हर कदम व गतिविधि पर्यावरण-मित्र होनी चाहिए।

---

[139] **कुमार रवीश, हिमाचल में बारिश से तबाही (YouTube)**
https://youtu.be/cUhVGurS2Uc?si=w3U4rTQTY3KXI1U8

'पहाड़ पर लालटेन' काव्य-संग्रह में शहरी जीवन से जुड़ी कविताओं में कहीं अपरिचित और अविश्वास की गंध भी शामिल है लेकिन मंगलेश के अन्दर महानगरीय जीवन के प्रति विरक्ति और विरोध का भाव नहीं है। उनके अनुसार हमारी नीति संसाधनों को ग्रहण करने की हो, न की शोषण करने की। विकास की अंधाधुंध दौड़ में यह नहीं भूलना है कि विकास सतत तो होना चाहिए पर उसी के साथ विकास नैतिक भी होना चहिए। विकास की अवधारणा केवल भौतिक विकास तक ही सीमित नहीं है अपितु मनुष्य का सर्वांगीण विकास भी उतना ही ज़रूरी है। इसलिए वे अपनी कविताओं में मनुष्यता की भी बात सतत करते हैं-

"घर से बहुत दूर आये हैं हम
तकलीफों की एक और ही दुनिया में
जहाँ लगातार दौड़ते रहना होगा
दलदल में धँसेंगे पैर
सूझेगा नहीं रास्ता सन्नाटे में
तब हम पुकारेंगे एक दूसरे को।"[140]

उनकी पंक्तियों से पता चलता है कि अभावों और दुखों का संसार केवल गांव में ही नहीं बल्कि शहर में भी मौजूद है। पहाड़ों से भिन्न परिवेश, जिनमें शहर, महानगर और जीवन के कई दूसरे पक्ष भी शामिल हैं। उनकी कविताओं में महानगरों के शोर और चकाचौंध के पीछे एक डरावना सन्नाटा और अंधकार है। वे मानते हैं कि शहरी जीवन उनके लिए तकलीफ़ भरा है पर उसे स्वीकार करने के अलावा उनके पास दूसरा कोई विकल्प नहीं है। इसलिए उनकी कविताओं में निराशा के चिह्न भी विद्यमान हैं। वे शहर का भयानक चित्र खींचते हुए लिखते हैं-

"मेरे रक्त की अंतिम उछाल के बाद
शुरू हो जाती है शहर की मुख्य दीवारें
xxxxxxx
वे आते हैं

[140] **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, एक पुरानी कहानी, पृष्ठ 29**

अपनी क्रूरता

के दमकते प्रसंगों से

औरतों को फुलकाने के लिए

उनकी अंतहीन करुणा दबोचकर ।"[141]

इन पंक्तियों में 'रक्त की अंतिम उछाल' उठाये गए निर्वासन के जोखिम को दर्शाती है। यहाँ जिन औरतों का जिक्र है उसका आशय मुग्ध भोले-भाले सीधे-सादे लोगों से भी हैं जिन्हें शहर तरह-तरह के लालच दिखाकर अपनी ओर खींचता है और अत्याचारी की तरह उन पर अत्याचार करता है।

अपनी अबोध कल्पना के जिन आकर्षणों में जकड़ा वह गाँव छोड़कर शहर में आता है वहाँ उसे वैसा कुछ नहीं मिलता। न तो उसे वह प्रेम मिलता है और न रोमांच मिलता है जो भविष्य के प्रति आदमी को उम्मीद और उत्सुकता से भरकर रखता है। शहर के जो बिंब उनकी कविता में हैं उनमें भी निष्क्रिय रूप से कहीं गहरे में पहाड़ की स्मृति ही दिखाई देती है । वहाँ जो भोलापन, भाईचारा, स्वच्छन्दता, सामुदायिकता, उन्मत्तता और मूल्य थे, वो सब शहरों में ग़ायब से हैं। शहर की आपाधापी, यहाँ की त्रासदियाँ और तकलीफों के बीच सामंजस्य न बैठ पाने से उनके भीतर एक बेचैनी घुमड़ती है। 'शहर-शहर' में वे लिखते हैं -

"कहाँ है मेरे हिस्से के प्रेम-संबंध

राशन के खाली कनस्तर रेल की पटरियाँ

और भविष्य रचने वाले रोमांच

कहाँ हैं मेरे हिस्से के कारतूस

मैं पूछता हूँ और शहर मुझ पर पहले

141 **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, शहर-शहर, पृष्ठ 55**

काला - पीला होता है फिर हरा हो जाता है

जिसमें मिटते हुए मैदान हैं और बचते हुए लोग।"[142]

मंगलेश डबराल ने अपनी कविताओं में एक ऐसे रचनाकार की पीड़ा को व्यक्त किया है जो अपनी रोजी-रोटी छोड़कर गाँव से शहर में आ गया है। जीवन की अभावाग्रस्त स्थितियाँ उन्हें शहर के संवेदनशून्य और मुखौटों से भरे जीवन के साथ समझौता करने के लिए बाध्य करती है। कवि इस दर्द को बड़ी अच्छी तरह समझता है। आजीविका के कारण ही लोग अपने सगे-संबंधियों, घर-परिवार को छोड़कर महानगरों में चले जाते हैं और मजबूरी से वही रह जाते हैं-

"मैंने शहर को देखा और मैं मुस्कुराया

वहां कोई कैसे रह सकता है

यह जानने मैं गया

और वापस न आया।"[143]

भीड़ में गुम हो जाना या अकेले रह जाना आज के महानगरीय जीवन का नियम बन गया है। मंगलेश जिस शहर में जीविका उर्पाजन करते थे, उससे जुड़ी उनकी प्रतिक्रियाएँ बेहद दिलचस्प है । 'दिल्ली में एक दिन' कविता में दिल्ली शहर को 'शोर, कालिख, पसीने और लालच का शहर' कहा गया है। मंगलेश डबराल शहर के परिप्रेक्ष्य में पहाड़ को और पहाड़ों के प्ररिप्रेक्ष्य में शहर को देखते हुए उस शहर का पाखण्ड, उसका चरित्र, उसकी कृत्रिमता या कुटिलता को उघाड कर हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं-

"इस शहर में दिखाई देते हैं विचित्र लोग

मेरे शत्रुओं से मिलते हैं उनके चेहरे

आरामदेयी कारों में बैठकर वे जाते हैं इंदिरा गाँधी

अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे की ओर।[144]

---

[142] **वहीं, पृ० 52**

[143] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, शहर 1, पृष्ठ 43**

[144] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, दिल्ली 1, पृष्ठ 45**

xxxxxx

धोखों से भरे इस नगर के चौराहों पर

बिना बात हॉर्न बजाती हुई लंबी चौड़ी कारें गुज़रती हैं

xxxxxxx

लंबे समय से यहाँ रहते हुए भी

वे पहली बार आये हुए लगते हैं

और रोज अजनबियों की तरह प्रकट होते हैं

रात में उन्हीं का है यह चमचमाता शहर।"[145]

'हम जो देखते हैं' काव्य-संग्रह की कविताएँ मंगलेश डबराल ने उस समय लिखी जब उत्तर आधुनिकतावाद महानगर की भाषा की संस्कृति में एक उथल-पुथल की तरह प्रवेश हुआ।

प्रवास जन्य अनुभव भी इन कविताओं में व्यक्त हुआ है। अमेरिका में मंगलेश डबराल ने साधन सम्पन्नता देखी है लेकिन उन्होंने यह महसूस किया कि वहाँ पर किसी को किसी दूसरे के प्रति सहानुभूति नहीं है। वे राष्ट्रवादी हैं, साम्राज्यवादी है लेकिन मानवीय नहीं है-

"अमेरिका में रोना मना है

उदास होना मना है"[146]

प्रौद्योगिकी के इस निरन्तर विकास ने मनुष्य के सोचने-समझने की शक्ति को नष्ट कर दिया है। अमेरिका प्रवास में मंगलेश डबराल महसूस करते हैं कि वहाँ पर हिंसा बहुत है, साम्प्रदायिकता बहुत है और अनावश्यक नियमों के बीच आत्मीयता कही ख़त्म होती जा रहीं है।

---

[145] **डबराल मंगलेश, नये युग में शत्रु, शहर के एकालाप, पृष्ठ 62**

[146] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, अमेरिका में कविता, पृष्ठ 75**

उपरोक्त सभी उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि मंगलेश डबराल केवल गाँवों के हालात से ही नहीं बल्कि शहरों की ऊब, भागदौड़ एवं अमानवीय क्रियाकलापों से भी उतने ही निकट से परिचित थे। ऐसी परिस्थितियों को वे यथावत् अपने साहित्य में उतारने में समर्थ है।

भाषा चिंतन

संस्कृति और भाषा का संबंध आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। भाषा संस्कृति का एक अभिन्न अंग है, और संस्कृति का भाषा पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। मंगलेश डबराल के कई साक्षात्कारों में तथा उनकी लेखनी में 'भाषा' को लेकर चिंतन दिखाई देता है और यह बात उनकी कविताओं पर भी लागू होती है। प्रो. दिलीप सिंह भाषा के संबंध में लिखते हैं कि - "भाषा हमारे समाजीकरण का माध्यम है अतः पल-पल वह हमसे आबद्ध है । उसकी प्रकृति और प्रकार्य पर हम कितना ध्यान देते हैं या इनके बारे में कितना जानते हैं, ये प्रश्न अगर हम अपने दिल से पूछें तो उत्तर निराशाजनक ही होगा । भाषा प्रयोक्ता होने के नाते भाषा के प्रति एक सकारात्मक और व्यापक दृष्टिकोण हमें अपनाना चाहिए।"[147]

भाषा को लेकर जितना चिंतन होना चाहिए उतना प्रायः भाषाविज्ञान के क्षेत्र में छोड़कर किसी अन्य क्षेत्र में नही होता अतः जन साधारण के लिए भाषा के प्रति जागरूकता लाने का काम होना अत्यावश्यक है।

हिंदी भाषा के प्रति मंगलेश डबराल ने सोशल मीडिया पर जो विचार व्यक्त किए, उन विचारों को पढ़कर कईयों ने उनका विरोध किया, कुछ लोगों को यह पढ़कर काफ़ी दुख हुआ और कुछ लोगों ने इसका एक अलग ही अर्थ गढ़ लिया। कवि क्या कहना चाहते होंगे यह जानने के लिए उनके विचार यहां पर उल्लेखनीय हैं -

"हिंदी में कविता, कहानी, उपन्यास बहुत लिखे जा रहे हैं, लेकिन सच यह है कि इन सबकी मृत्यु हो चुकी है हालांकि ऐसी घोषणा नहीं हुई है और शायद होगी भी नहीं क्योंकि उन्हें ख़ूब लिखा जा रहा है। लेकिन हिंदी में अब सिर्फ़ 'जय

[147] **सिंह (प्रो) दिलीप, भाषा साहित्य और संस्कृति शिक्षण, पृष्ठ 18**

श्रीराम' और 'वंदे मातरम्' और 'मुसलमान का एक ही स्थान, पाकिस्तान या कब्रिस्तान' जैसी चीज़ें जीवित हैं। इस भाषा में लिखने की मुझे बहुत ग्लानि है। काश, मैं इस भाषा में न जन्मा होता।"[148]

ऐसा उन्होंने क्यों लिखा होगा इसपर उनके मित्र प्रो. अपूर्वानंद लिखते हैं कि 'फासिज्म' भारत या उनकी भाषा को जिस तरह विकृत कर रहा था, उससे मंगलेश डबराल गहरे विचलित थे।[149] मंगलेश डबराल हिंदी को 'धमकी की भाषा' कहने लगे थें क्योंकि सभी ओर केवल हिंसक शब्दावलियों का प्रयोग अधिक नज़र आ रहा था। उनकी कई कविताएं जैसे 'प्रेम', 'प्रेम सफ़लता की कुंजी', 'तुम्हारा प्यार', 'एक बेतरतीब डायरी', 'प्रेम का पाठ' आदि, इस बात को स्पष्ट करती हैं कि वे समाज में सद्भाव और सौहार्द देखना चाहते थे। प्रो. अपूर्वानंद मंगलेश डबराल की स्मृति में लिखे एक लेख में कहते है कि "वे वामपंथी थे लेकिन हाल के वर्षों में मैंने उनमें गांधी को लेकर बढ़ते अनुराग को नोट किया।"[150]

उनकी अहिंसावादी दृष्टि कई बार उनकी लेखनी में झलकती है। उनके मरणोपरांत प्रकाशित कविता संग्रह में संकलित उनकी कविता 'प्रेम (दो प्रारूप)' में भी भाषा चिंतन दिखाई देता है-

"जिससे मुझे प्रेम था
उससे चाहत था यही कि वह इसे अभिव्यक्त करे
देह से, अंगों से, रोओं से, शब्दों से, वाक्यों से, भाषा से
वह पुकारे, वह फैलाए प्रेम को दूर-दूर तक"[151]

मंगलेश डबराल चाहते है कि मनुष्य में संवेदनाएं, प्रेम, मनुष्यता आदि जीवंत रहे और वे लगातार उसे अभिव्यक्त करें ताकि दुनिया में दूर-दूर तक प्रेम का फैलाव हो। अभिव्यक्ति के लिए भाषा एक सशक्त साधन है।

उन्होंने कई व्यंग्यात्मक कविताएं भी लिखी जैसे -

---

148 **मंगलेश डबराल की फेसबुक पेज से**

149 **अपूर्वानंद, मंगलेश डबराल: मैं चाहता हूं कि स्पर्श बचा रहे...,** https://thewirehindi.com/150891/hindi-literature-remembering-manglesh-dabral/

150 **वहीं "**

151 **डबराल मंगलेश, पानी का पत्थर, प्रेम (दो प्रारूप), पृष्ठ 75**

"जय उसकी जो रोटी के एवज में देता बम,

जय उसकी जिसने मानवता को दिया निष्कासन

जय भाषा जिसमें नहीं रहा कुछ अर्थ"[152]

यहां कवि ने हर उस चीज़ की 'जय' की है जो समाज के लिए घातक है। जो लोग भाषा के महत्त्व को, उसके अर्थ को नहीं समझते, उनपर वे व्यंग्य कसते हैं। ऐसे लोग भाषा की शक्ति को जाने बग़ैर कही पर भी किसी भी शब्द का प्रयोग करते है जिससे हमारी भाषा अपना अस्तित्व खो रही है।

आज समाज पर पाश्चात्यीकरण का जो प्रभाव पड़ रहा है। उसमें हमारी गौरवशाली अक्षुण्ण संस्कृति भी अपना गौरव खोने लगी है। आज की सबसे बड़ी समस्या यही है कि हमें अपनी जड़ों से जुड़े रहने में लज्जा का अनुभव हो रहा है। यह पाश्चात्य प्रभाव हमारी संस्कृति, जीवन, विचार, मूल्यों और भाषा पर भी पड़ रहा है। हिन्दी जो हमारी संस्कृति, है और राष्ट्रभाषा होने के कारण उसमें संवाद करना हमारे लिए गौरवपूर्ण बात होनी चाहिए किंतु आज वहीं भाषा बोलते हुए हम हीनता और दीनता का अनुभव करते हैं। समकालीन कवि इस स्थिति की भयावहता को जानते-बुझते अपनी भाषा और संस्कृति के लिए संघर्षरत है।

मंगलेश डबराल की कविता 'वर्णमाला' भाषा की हिंसा पर केंद्रित है। यह कविता 2020 में उनके कविता संग्रह में संकलित है और नसरुद्दीन शाह द्वारा हिंदी दिवस के अवसर पर इसका पाठ भी किया गया-

"आततायी छीन लेते हैं हमारी पूरी वर्णमाला

वे भाषा की हिंसा को बना देते है

समाज की हिंसा

ह को हत्या के लिए सुरक्षित कर दिया गया है

[152] **वहीं, शीर्षकहीन : पाँच, पृष्ठ 41**

हम कितना ही हल और हिरन लिखते रहें

वे ह से हत्या लिखते रहते हैं हर समय"[153]

आज समाज में हर कोई अपना, अपने धर्म का, अपनी जाति का वर्चस्व स्थापित करना चाहते हैं और ऐसा करने के लिए वे हिंसा का मार्ग ही अपनाते हैं। बढ़ती सांप्रदायिकता के साथ प्रत्येक वस्तु को धर्म के साथ जोड़ा जाता है, यहां तक कि भाषा को भी! भाषा का कोई धर्म नही होता पर आज अत्याचारी लोग हमारी भाषा को भी नियंत्रित कर रहे हैं। भारतीय संविधान के अनुसार सभी नागरिकों को भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार होना चाहिए परंतु हम क्या बोलें, क्या लिखें, किस शब्दावली का प्रयोग करें इसपर हमारा अधिकार नज़र नही आता। ऐसे में हमें अपने विवेक का प्रयोग करके अपनी बात रखनी चाहिए और न कि किसी प्रभाव में आकार।

मंगलेश डबराल की कविताओं में केवल हिंदी भाषा को लेकर ही नहीं, बल्कि अन्य सभी भाषाओं के लिए गहरी चिंता और उनके सौंदर्य को बचाए रखने की ज़िद नज़र आती है। संस्कृत, हिंदी, उर्दू तथा विदेशी भाषाओं से तो उनका लगाव था ही, पर साथ में लोकभाषा, लोक- संस्कृति को लेकर भी उनकी कविताओं में चिंतन साफ़ झलकता है। लोकभाषा के प्रति उनका स्नेह मूलतः उनके परिवार के कारण ही दिखाई देता है यह कहना अनुचित नहीं होगा। कला समीक्षक विनय उपाध्याय के साथ की गई बातचीत इस बात को प्रमाणित करती है। मंगलेश डबराल बताते है कि उनके पिता गढ़वाली के कवि थे, उन्होंने खंडकाव्य भी लिखा था और साथ ही गढ़वाली भाषा में छंदबद्ध अनुवाद भी किए थे। उनके दादा ने भी गढ़वाली कहावतों का एक बड़ा संग्रह तैयार किया था।[154]

उनकी कविता 'एक लोकगीत सुन कर' लोक भाषा के शब्द-सौंदर्य पर केंद्रित है। किस प्रकार स्त्रियां अपनी व्यथा को माधुर्य के साथ अपने गीत में व्यक्त करती हैं इसपर उन्होंने गौर किया है -

"दूर से एक स्त्री का स्वर गूंजता हुआ आता था

सुरीला सुखद और मार्मिक

---

[153] **डबराल मंगलेश, स्मृति एक दूसरा समय, वर्णमाला, पृष्ठ 20-21**

[154] **उपाध्याय विनय, स्मृति शेष: मंगलेश डबराल (साक्षात्कार),** https://hindi.news18.com/blogs/vinay-upadhyay/music-of-life-is-composed-within-poetry-manglesh-dabral-in-memories-3371773.html

xxxxxxx

लेकिन अन शब्दों में भरी थी एक दासता

xxxxxxx

स्त्रियां मीठे स्वरों में बांचती हैं अपनी व्यथा

एक अभागेपन की कथा"[155]

उनकी एक और कविता 'शब्दार्थ' भी भाषा में शब्दों के बदलते रुप और अर्थ को लेकर चिंता व्यक्त करते हैं। उनके अनुसार भीषण शब्द जैसे 'भय' अब और भी भयानक है और 'आतंक' और ज़्यादा आतंकवादी पर कोमल भाव जैसे 'प्रेम' के भीतर अब प्रेम करते लोग नही दिखते। वे लिखते हैं -

"ज़्यादातर शब्दों को छोड़ कर चले गए हैं उनके अर्थ

किसी विपरीत दिशा में

हमारे समय के आततायी

उन्हें कहीं दूसरी तरफ़ हांक कर के गए"[156]

इस प्रकार उनकी कई सारी कविताएं भाषा को ही केंद्र में रखते हुए लिखी गई हैं और कुछ कविताओं में अप्रत्यक्ष रूप से भाषा के प्रति उनका लगाव दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने

मानवीय मूल्यों का ह्रास

समकालीन कविता की एक विशेषता यह भी है कि यहां प्रतिकूल परिस्थितियों में भी कवि भविष्य के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए नज़र आते हैं। प्रख्यात आलोचक डॉ. रेवती रमण के अनुसार सब कुछ प्रतिकूल और व्यवस्थित दिखाई देने

[155] **डबराल मंगलेश, स्मृति एक दूसरा समय है, एक लोकगीत सुनकर, पृष्ठ 24-25**

[156] **डबराल मंगलेश, स्मृति एक दूसरा समय है, शब्दार्थ, पृष्ठ 27**

पर भी कवि और कलाकारों की सक्रियता समाज की समस्याओं के खिलाफ़ होनी चाहिए क्योंकि उनकी चिंता हमेशा जायज़ होती है। यह सक्रियता हमें कवि मंगलेश डबराल की कविता 'एक पुरानी कहानी' में भी नज़र आती है -

"आसमान में बादल हैं,
कभी भी बारिश हो सकती है
हमें बचा लेनी चाहिए अपनी क़ीमती चीज़ें
जैसे चप्पलें, जेबों में पड़ी पुरानी चिट्ठियां
दोस्तों के पते-ठिकाने"[157]

कभी-कभी कवि अजीब किस्म के बिम्बों के माध्यम से जीवन की निराशा को व्यक्त करते है लेकिन फिर भी वह कभी निराश नहीं होते क्योंकि मानव के अन्दर जिजीविषा प्रवृत्ति होती है, जो उसे निराशा में भी आशा ढूंढ़ने की प्रेरणा देती है। 'आखिरी वारदात' कविता में अस्त-व्यस्त एवं छिन्न-भिन्न हो रहे मानवीय मूल्यों के बीच में एक अजीब-सा संबंध स्थापित करने का भाव मंगलेश डबराल के द्वारा प्रकट किया गया है। यही भाव संघर्ष को जन्म देता है और यह संघर्ष मजबूर होकर नहीं बल्कि एक प्रक्रिया के रूप में मंगलेश डबराल हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं -

"मैं दोनों हाथ बाँधता हुआ
बस-स्टॉप पर खड़ा होता हूँ
जहाँ एक ताजा पोस्टर मेरी प्रतीक्षा में है
और एक अज्ञात चिड़िया
मेरी स्मृति में चहचहाने को आतुर है।"[158]

आजकल के समाज में कविताओं के पाठक कम हो जाने की चिंता लगातार कई कवियों द्वारा व्यक्त की जाती है। कवि मंगलेश डबराल के अनुसार इसके लिए राजनीति और बाज़ार ज़िम्मेदार है जिनके द्वारा तय किए रास्तों पर कविता तथा

[157] **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, एक पुरानी कहानी, पृष्ठ 28-29**
[158] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, आखिरी वारदात, पृष्ठ 33**

कवियों का वश नहीं है। वे कहते हैं - "हमारे समाज का तेज़ी से अमानवीयकरण किया जा रहा है। उसमें कविता की जगह और भी कम होती जा रही है।"[159]

आज इंसान इतना संवेदनहीन हो रहा है कि अपने स्वार्थ के लिए वह किसी भी हद तक जा सकता है। विकास के नाम पर आदिवासियों का पलायन और विस्थापन सदियों से होता रहा है। "आज़ादी के बाद के पहले पाँच वर्षों में लगभग ढाई-लाख लोगों में से 25 प्रतिशत आदिवासियों को मजबूरन विस्थापित होना पड़ा। विकास के नाम पर लाखों लोगों को अपनी रोज़ी-रोटी, काम-धंधों तथा जमीनों से हाथ धोना पड़ा।...अन्ततः अपनी ही जमीनों व संसाधनों से विलग हुए आदिवासियों का जीवन मरणासन्न अवस्था में पहुँच गया।"[160]

मंगलेश डबराल ने आदिवासियों की करुण गाथा को भी अपनी कविता में स्थान दिया है -

"एक आदिवासी बहिष्कृत कर दिया जाता है
अपने ही घर के भीतर रहते हुए वह
घर से दूर कहीं फेंक दिया गया है
अपने जंगल, अपनी ज़मीन पर रहते हुए वह
अपने जंगल और ज़मीन से दूर कहीं जा चुका है।"[161]

भारतीय संस्कृति में स्त्रियों का महत्त्व इतिहास सिद्ध है। संस्कृत में एक श्लोक है- 'यस्य पूज्यंते नार्यस्तु तत्र रमन्ते देवता:। अर्थात्, जहां नारी की पूजा होती है, वहां देवता निवास करते हैं। ऐसे में इस बात पर गौर करना चाहिए कि आज स्त्री को किस दृष्टि से देखा जाता है। भूमंडलीकरण के साथ जैसे जैसे विज्ञापन का क्षेत्र व्यापक होता गया, उसी के साथ विज्ञापन में स्त्रियों के शरीर का वस्तुकरण और कामुकीकरण बढ़ता गया। मनुष्य आज इतना अर्थकेंद्रित हो चुका है कि अपने मूल्यों से, नैतिकता से बिछड़ता जा रहा है -

---

[159] **डबराल मंगलेश, उपकथन - पंद्रह संवाद, अवधेश श्रीवास्तव की बातचीत, पृष्ठ 159**
[160] **गुप्ता रमणिका (संपादक), आदिवासी: विकास से विस्थापन, पुस्तक की फ़्लैप से**
[161] **डबराल मंगलेश, स्मृति एक दूसरा समय है, घर हमेशा दूर होता है, पृष्ठ 110**

“और वे विज्ञापनी मॉडलें भूतपूर्व देहें जो अब मुजरिम बनी हुई हैं

जिन्हें ढलती उम्र के कारण काम मिलना बंद हो गया है

अपनी बेरोज़गारी की वजहें भी प्रकट नहीं करती हैं

हमारी अश्लीलता उनके फ़ोटो में ही अपनी ख़ुराक़ पा लेती है”[162]

इससे पता चलता है कि मनुष्य अपनी इच्छाएं और लालच पूरा करने के लिए कुछ भी कर सकता है। भारत रत्न से सम्मानित हिंदुस्तान के प्रख्यात शहनाई वादक उस्ताद बिस्मिल्लाह ख़ान के पोते नज़रे हसन ने 2017 में उनकी दो शहनाईयां बनारस के दो व्यापारियों को बेच दी थीं। बेंचने का कारण सिर्फ़ यह कि उसे उन पैसों से एक महंगा मोबाइल ख़रीदना था -

“एक दिन इस क्योतो में मेरी शहनाइयां नीलाम हुई

उन्हें मेरे अपने ही पोते नज़रे हसन ने चुराया

और सिर्फ़ एक महंगा मोबाइल ख़रीदने की ख़ातिर

बेच दिया फ़कत 17000 रूपये में”[163]

इस तरह से आजकल बाज़ार के युग में पैसा ही सर्वश्रेष्ठ बन गया है। पैसों के सामने इंसान के लिए आज मानवीयता का भी कोई मोल नहीं रहा है। जिन शहनाईयों से उस्ताद की स्मृतियां जुड़ी हुई थीं, उनको केवल चंद पैसों के लालच में बेच देना, वो भी उनके ही पोते द्वारा, इस बात को प्रमाणित करता है।

संस्कृति हीनता

---

[162] **डबराल मंगलेश, नए युग में शत्रु, कॉलगर्ल, पृष्ठ 79**

[163] **डबराल मंगलेश, स्मृति एक दूसरा समय है, शहनाईयों के बारे में बिस्मिल्लाह ख़ान, पृष्ठ 47**

"इन ढालानों पर वसंत

आएगा हमारी स्मृति में

ठंड से मरी हुई इच्छाओं को फिर से जीवित करता।"[164]

गहरे अवसाद को लेकर चलने वाली इन पंक्तियों में केवल वैयक्तिक अवसाद नहीं है। ये हमारी आज की संस्कृति हीनता के संकट से उत्पन्न अवसाद की गहराई है। आगे जाकर कवि की विविध अर्थों से भरी हुई व्यंजना इस प्रकार भी प्रकट होती है-

"ढालानों से मुसाफ़िर की तरह

ज़रता रहेगा अन्धकार

चारों ओर पत्थरों में दबा हुआ मुख

फिर उबरेगा झाँकेगा कभी"[165]

समकालीन परिवेश में संस्कृति रूपी वसन्त कही नष्ट होता नज़र आ रहा है। संस्कृति हीनता से उत्पन्न भ्रष्टाचार और अनैतिक अन्धकार मुसाफ़िर की तरह गुज़रता रहता है। चारों ओर के पत्थरों में दबा हुआ मुख इस संस्कृति हीनता का परिणाम है।

निष्कर्ष

इस दृष्टि से मंगलेश डबराल की कविताएं अपने समाज, परिवेश, परिस्थिति और संस्कृति से पूर्णतया सम्बद्ध और प्रभावित है। देश में घट रही छोटी-बड़ी घटनाओं के प्रति उनकी कविताओं में विशेष आग्रह है। अपने जीवन काल में उन्होंने जो भी अनुभव किया, उन अनुभवों को ही उन्होंने कविता के रूप में ढाला है।

---

[164] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, वसंत, पृष्ठ 09**

[165] **वही, पृष्ठ 09**

मंगलेश डबराल की काव्य-यात्रा की शुरूआत में ही हम सामाजिक समस्याओं और संघर्ष को मुख्य रूप से उनकी कविता में पाते हैं। उनके काव्य में आम लोगों की पीड़ा, बैचेनी, दुःख, पूंजीवादी विसंगतियाँ एवं निम्न व मध्यमवर्गीय जीवन की तमाम सच्चाईयाँ उभरकर सामने आई हैं। वे अपने काव्य में इन विसंगतियों पर घातक प्रहार करते हुए समाज सुधार के लिए निरन्तर प्रयास करते नज़र आते हैं। मंगलेश डबराल ऐसे उभरते हुए युवा पीढ़ी के कवि थे जो अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज के कटु सत्य को कठोरता के साथ निर्भय होकर व्यक्त करते थे। उनकी अधिकतर कविताएँ समाज और संस्कृति के इर्द-गिर्द ही घूमती हैं। वे समाज में व्याप्त शोषण मूलक व्यवस्था को समाप्त करके एक नई मानवीयता से भरी हुई व्यवस्था का निर्माण करना चाहते हैं। जैसे-जैसे समाज के अन्दर जर्जरता बढ़ती जा रही है, वैसे-वैसे शासक वर्ग की विलासिता और उसके राग-रंग बढ़ते जा रहे हैं और इन दोनों के बीच में आम जनता पिसती जा रही हैं। मंगलेश डबराल केवल शासक वर्ग की शक्ति को ही नहीं दिखाना चाहते बल्कि इस शक्ति के कारण लुप्त होती जा रही एक मनुष्य के प्रति दूसरे मनुष्य की संवेदना और हमारी संस्कृति को भी बचाना चाहते हैं।

मंगलेश डबराल के सात कविता संग्रहों से प्राप्त कविताओं के सामाजिक और सांस्कृतिक अध्ययन से बाल चिंतन, परिवार संबंधित चिंतन, स्त्री की स्थिति जैसे मुख्य विषयों के साथ अन्य सामाजिक विषय भी व्याप्त हैं। दूसरी ओर भूमंडलीकरण, ग्राम्य एवं नगरीय संस्कृति, भाषा चिंतन, मानवीय मूल्यों का ह्रास जैसे संस्कृति से जुड़े विषय भी देखने को मिलते हैं। अपने साहित्य के माध्यम से कवि इन विद्रुपताओं एवं अन्य कई समस्याओं के प्रति हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। इन समस्याओं को न केवल उन्होंने हमारे सामने प्रस्तुत किया है बल्कि अपने साहित्य के माध्यम से इन बुराइयों पर कड़ा प्रहार भी किया है। मंगलेश डबराल को जनवादी कवि कहना उचित होगा क्योंकि उन्होंने कई सांस्कृतिक प्रश्न हमारे सामने रखे हैं और संस्कृति व्यक्तिगत न होकर सामाजिक होती है। अतः संस्कृति और समाज के आपसी संबंध को देखते हुए और दोनों की उपस्थिति मंगलेश डबराल के काव्य में देखते हुए कवि मंगलेश डबराल सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकार के कवि सिद्ध होते हैं।

आधार ग्रंथ

1) डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, राधाकृष्ण प्रकाशन (दिल्ली), संस्करण 2021

2) डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन (दिल्ली), संस्करण 2022

3) डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, राधाकृष्ण प्रकाशन (दिल्ली), संस्करण 1997

4) डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, वाणी प्रकाशन (नयी दिल्ली), संस्करण 2004

5) डबराल मंगलेश, नए युग में शत्रु, राधाकृष्ण प्रकाशन (नयी दिल्ली), संस्करण 2013

6) डबराल मंगलेश, स्मृति एक दूसरा समय है, सेतु प्रकाशन - दिल्ली, संस्करण 2020

7) डबराल मंगलेश, पानी का पत्थर, राजकमल प्रकाशन (नयी दिल्ली), संस्करण 2023

संदर्भ ग्रंथ

1) पाण्डेय मैनेजर, शब्द और कर्म, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1997

2) रमण (डॉ.) रेवती, समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य, नवनीत प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 1994

3) सिंह (डॉ.) फणीश, हिंदी साहित्य : एक परिचय, राजकमल प्रकाशन - नई दिल्ली, संस्करण 2006

4) देवराज (डॉ.) भारतीय संस्कृति (महाकाव्यों के आलोक में), प्रकाशन शाखा - सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, संस्करण 1961 (इपुस्तकालय)शर्मा लीलाधर 'पर्वतीय', भारतीय संस्कृति कोश, पृ० 929, राजपाल एंड संस प्रकाशन - दिल्ली, संस्करण 2007

5) सिंह रामधारी 'दिनकर' , संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन - उत्तर प्रदेश, संस्करण 2011

6) राधाकृष्णन सर्वपल्ली (विश्वंभरनाथ त्रिपाठी - अनु), स्वतंत्रता और संस्कृति, गीतांजलि प्रकाशन, संस्करण 2020

7) पंत सुमित्रानन्दन, उत्तरा, भारती भण्डार प्रकाशन - इलाहाबाद, संस्करण 2006

8) डॉ॰ रामजी उपाध्याय, भारत की प्राचीन संस्कृति, किताब महल प्रकाशन - इलाहाबाद, संस्करण 1948 (इपुस्तकालय)

9) आप्टे वामन शिवराम (संपादक), संस्कृत हिंदी कोश, चौखंबा संस्कृत सिरीज़ ऑफ़िस - वाराणसी, संस्करण 2009

10) गुप्त (डॉ.) मदनगोपाल, मध्यकालीन हिंदी काव्य में भारतीय संस्कृति - पंद्रहवीं तथा सोलहवीं शतियों के हिन्दी-काव्या में प्रतिबिम्बित भारतीय संस्कृति एव समाज का अध्ययन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस (दिल्ली), संस्करण 1968 (गूगल बुक्स)

11) विश्वास विनय, आज की कविता, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2019

12) राजपूत (डॉ.) विद्यावती जी., मंगलेश डबराल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, सुयश प्रकाशन, संस्करण 2023

13) कुमार विजय, साठोत्तरी हिन्दी कविता : परिवर्तित दिशाएं, प्रकाशन संस्थान- नई दिल्ली, संस्करण 1986

14) शर्मा (डॉ) जयप्रकाश , समकालीन हिन्दी काव्य : दशा और दिशा, अनंग प्रकाशन, संस्करण 2004

15) कुमार विजय, कविता की संगत, आधार प्रकाशन - हरियाणा, संस्करण 2012

16) सिंह रामधारी 'दिनकर', राष्ट्र भाषा और राष्ट्रीय एकता (भाषण और निबंधों का संकलन), लोकभरती प्रकाशन-इलाहाबाद, संस्करण 2020 (गूगल बुक्स)

17) सिंह (प्रो) दिलीप, भाषा साहित्य और संस्कृति शिक्षण, वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली, संस्करण 2007 (गूगल बुक्स)

18) डबराल मंगलेश, उपकथन - पंद्रह संवाद, आधार प्रकाशन - हरियाणा, संस्करण 2014

पत्रिका

1) आलोचना 2003
2) साक्षात्कार अगस्त 2004

अंतर्जाल संदर्भ

1) लाइव हिंदुस्तानी टीम, जानिए बचपन बचाओ आंदोलन के बारे में - लेख (गूगल), अक्टूबर 2014
https://www.livehindustan.com/news//article1-story-455830.html

2) कुमार रवीश, हिमाचल में बारिश से तबाही (यूट्यूब), अगस्त 2023
https://youtu.be/cUhVGurS2Uc?si=T_6V5lZDe4oBwjhO

3) अपूर्वानंद, मंगलेश डबराल: मैं चाहता हूं कि स्पर्श बचा रहे… (गूगल), दिसंबर 2020

https://thewirehindi.com/150891/hindi-literature-remembering-manglesh-dabral/

4) उपाध्याय विनय, स्मृति शेष: मंगलेश डबराल… - साक्षात्कार (गूगल), दिसंबर 2020

https://hindi.news18.com/blogs/vinay-upadhyay/music-of-life-is-composed-within-poetry-manglesh-dabral-in-memories-3371773.html

5) भट्ट चिरंतना, वैश्यावृत्ति कराने के लिए बेटियों के जन्म पर जश्न (गूगल), अक्टूबर 2016

https://www.bbc.com/hindi/social-37703696

6) मंटो सआदत हसन, समाज और वैश्या का रिश्ता (गूगल)

https://www.rekhta.org/quotes/samaaj-aur-vaishya-ka-rishta-saadat-hasan-manto-quotes?lang=hi

चतुर्थ अध्याय

समकालीन कविता में मंगलेश डबराल का महत्त्व

मंगलेश डबराल पहाड़ी इलाके (टिहरी गढ़वाल) के रहनेवाले हैं, अतः पूरा पहाड़ी इलाका इस संग्रह (पहाड़ पर लालटेन) में सारार हो उठा है...पहाड़ है, ढलान है, नदी है, झरना है, बर्फ़ है, कुहरा है, पेड़ है, पुल है, बर्फ है, बाढ़ है, चिड़िया है, आकाश है, फूल है और हवा के साथ वसंत है। इसका यह मतलब नहीं है, कि मंगलेश डबराल की कविता केवल आंचलिक कविता है। व्यक्ति, समूह, परिवेश, गांव, क़स्बा, शहर- सब पर, कमोबेश रूप में कवि की नज़र गई है।

मंगलेश जब पहाड़ से चलकर दिल्ली आए, तो वहां अकविता का दौर चल रहा था। नेतृत्व कर रहे थे जगदीश चतुर्वेदी। धूमिल, प्रभाकर माचवे, भारत भूषण अग्रवाल और लीलाधर जगूड़ी जैसे गंभीर कवि भी अकविता लिख रहे थे।[166] मंगलेश डबराल ने भी कुछ अकवितानुमा चीजें लिखीं, जिनमें से एक कविता 'आलोचना' में प्रकाशित हुई, जिसे आधार बनाकर अशोक वाजपेयी ने अकविता वाली नई पीढ़ी की ख़ूब खुबर ली (यह लेख 'फ़िलहाल' में संकलित है)। जल्द ही मंगलेश डबराल ने स्थिति को भापा। वे जान गए कि वहां एक संपूर्ण मानवीय संबंध नहीं है। उस धारा में बहते - बहते वे संभल गए। कवि के रूप में मान्यता प्राप्त करने की तत्कालीन स्थिति का बयान करते हुए वे कहते है- "आठ दस कविताएं जिनको लेकर मैं आया था, उन दिनों नामवर जी और भारतभूषण अग्रवाल को पसन्द आई। छपीं भी और उनसे मुझे कवि मान लिया गया।"[167]

मंगलेश डबराल को अकविता में मनुष्य विरोधी अभिव्यक्तियां नज़र आई। उनके अनुसार अकविता में हिंसक भावनाएं और यौन शब्दावली थी और वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि "मुझे भी झेंप होती है कि दो-चार ऐसी कविताएं मैंने भी लिखी हैं।"[168]

---

[166] **डबराल मंगलेश, उपकथन : पंद्रह संवाद, अवधेश श्रीवास्तव की बातचीत, पृष्ठ 156**

[167] **मिश्र (डॉ) सरजू प्रसाद, समकालीन हिंदी कविता के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर, मंगलेश डबराल : भूखे पेटों से क्रांति होती है... (लेख), पृष्ठ 171**

[168] **डबराल मंगलेश, उपकथन : पंद्रह संवाद, अवधेश श्रीवास्तव की बातचीत, पृष्ठ 156**

डॉ. परमानंद श्रीवास्तव ने मंगलेश की कविता के वैशिष्ट्य पर रोशनी डालते हुए लिखा है- 'मंगलेश अपने स्वभाव के अनुरूप ही चुपचुप यथार्थ की जटिलता में भी घुसते हैं, पर अभिव्यक्ति उनके लिए वहीं संभव होती है, जब एक स्थिति कम से कम शब्दों में सब मुखौटे छोड़कर प्रगति जैसी निश्छलता या सादगी में पारदर्शी हो उठे।' इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि मंगलेश भोंपूवादी प्रचारक प्रगतिवादी तरीके से कविता नहीं लिखते हैं। वे मुक्तिबोध की इस चेतावनी से पूर्णतः सहमत हैं और उस पर अमल भी करते हैं कि अगर हम स्थूल यथार्थवाद में फंसे रहे तो इससे न मनुष्य की संघर्ष चेतना का कोई विकास हो सकता है और न प्रगतिशील विचारधारा का।

जिस पहाड़ से चलकर मंगलेश डबराल महानगर तक पहुंचे, उस पहाड़ को उन्होंने पूरी तरह भुलाया नहीं है। उनके संग्रह 'पहाड़ पर लालटेन' में वह मौजूद है, जिसे समीक्षकों ने स्थानीयता को समकालीन समय की जटिलताओं के बीच में रखकर देखने की कला कहा है। पहाड़ पर लालटेन का होना उस संघर्षकामी जन का प्रतीक है, जिसकी भूख एक मुस्तैद पंजे में बदल रही है। जंगल से लगातार दहाड़ का आना तथा पत्थरों पर इच्छाओं का दांत पैने करना जनचेतना की जागृति का प्रतीक है।

इस संग्रह में एक अन्तर्विरोध दिखाई देता है-आशा-निराशा के दो परस्पर विरोधी अतिवादी छोर। बंजर में बेशुमार पौधों का नृत्य तथा उसका नए मनुष्य की गंध से भर जाना दलित शोषित की क्रांति-चेतना की ओर इंगित करता है। लेकिन यह क्रांति-चेतना बोध गहरी निराशा में विलीन होता दिखाई देता है। इस संग्रह में ही नहीं अपने आगामी काव्य-संग्रहों में भी मंगलेश डबराल ने अपने समय की नब्ज़ पर हाथ रखा है।

उन्होंने समकालीन जीवन में बढ़ती बेरूख़ी, तानाशाही और अमानवीयता को अपने काव्य की विषयवस्तु बनाया है। लंबी कविताओं की रचना से बचने वाले इस कवि ने काव्य-रचना में संयम से काम लिया हैं। वे ख़ुद इस बात को स्वीकार करते है- "लंबी कविताओं वाली मेरी संवेदना शायद नहीं है।"[169] पंक्तियों की संख्या बढ़ाकर कविता को अनावश्यक विस्तार देने या अवांछित शब्दों की भरमार करने की प्रवृत्ति से वे सदैव दूर रहते हैं, इसलिए उनकी कविताएं मर्म पर चोट करने वाली, सार्थक एवं नुकीली होती हैं।

[169] **वहीं, ललित कार्तिकेय से बातचीत, पृष्ठ 15**

वे शहर को सबको निगल जानेवाला सांप कहते है। जिस समय में सारा समाज बाज़ार की चकाचौंध में व्यस्त था, ऐसे समय में उन्होंने आने वाले ख़तरे की ओर अपनी कविताओं के माध्यम से इशारा किया है।

यह बात गौर करने लायक है कि 'पहाड़ पर लालटेन' संग्रह में पहाड़ की तुलना में शहर ज़्यादा जगह घेरे हुए है। यह उनका पहला संग्रह होने के कारण अपने गांव की स्मृतियां तथा शहर का नयापन, दोनों इस संग्रह में देखा जा सकता है। शहर का अमानवीय रूप 'आखिरी वारदात' कविता में साकार हुआ है। 'शहर-2' में शहर फफूँद की तरह फैलता हुआ वर्णित है। ऐसे प्रतीक उन्होंने हिंदी कविता में लाए जो इससे पूर्व प्रचलित नही थें।

प्रेम की रंगीनियों एवं विलासिता का रीतिकाव्य उत्तर छायावादी कालखंड में बहुत लिखा गया। समकालीन हिन्दी कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षरों की चिंता का विषय नारी की ग़ुलामी और शोषण है। भारतीय नारी की परंपरित छवि की यथार्थ तस्वीर मंगलेश डबराल अपनी कविताओं के माध्यम से खींचते है। हालांकि मंगलेश डबराल के लेखन काल में नारीवाद का प्रचलन भारी मात्रा में हो चुका था परंतु उन्होंने मेहसूस किया कि स्त्री अधिकार केवल कागज़ों और भाषणों तक ही सीमित हैं। स्त्री अत्याचार के कई किस्से हैं जो आज भी छिपे हैं। कुछ ऐसे ही किस्से तथा समस्याएं उनकी कविताओं में देखने को मिलती है। पिता के घर से पति के घर जाने पर रात भर में एक स्त्री कितने भारी कायाकल्प से गुज़रती है इसका भी करुणामय वर्णन उनकी कविता में है।

इस प्रकार की कविताएं मंगलेश डबराल के हर संग्रह में हैं। 'पहाड़ पर लालटेन' में संकलित 'रेल में सात कविताएँ' निर्जीव रेल के विविध रूप प्रस्तुत करती है। बूढ़ा व्यक्ति रेल को मौत की तरह देखता है। किताब पढ़ती लड़की की किताब के पन्नों से रेल आंसू की लकीर की तरह गुज़रती है। रेल - यात्रा से यह अनुभूति भी होती है कि कितनी सारी नदिया हैं, जिन्हें मैं नहीं जानता और कितना सारा जल है, जिसे मैंने नहीं छुआ। एक जगह बार-बार रेल आकर रूकती है और कुछ देर धुआं छोड़ती है-कवि बताता हैं कि यह वह जगह है, जहां हम जवान हुए थे एक दिन। इस प्रकार किसी भी सामान्य सी लगने वाली घटना या प्रसंग को भी उन्होंने अपनी कविताओं में जगह दी है और उसके गहरे अर्थ तक पाठकों को पहुंचाने की चेष्टा की है।

हमारे समय के जीवन और साहित्य के बीच जो गहरी खाई निर्मित हुई है, मंगलेश डबराल उस ओर भी संकेत करते है। आदमी की सबसे बड़ी कमज़ोरी है भूख, जो दिन में तीन बार लगती है। वह आदमी को पराजित कर देती है। 'भूखे पेटों

से क्रांति होती है और उन्हीं से क्रांति कुचली भी जाती है', इस सत्य को मंगलेश डबराल की कविताएं रेखांकित करती है।

मंगलेश डबराल के दूसरे संग्रह 'घर का रास्ता में विगत जीवन की स्मृतियां नगर की अमानवीयता से उन्हे उबारने में कामयाब नहीं हो पाती हैं। नगर का स्वार्थी ठंडापन उनको सताता है। इस संदर्भ में 'आश्चर्यलोक' कविता दृष्टव्य है। एक आदमी शहर में लू लगने की शिकायत करता हांफता हुआ आता है। अपनी चमड़ी बचाने की फ़िक्र में व्यस्त शहरी का उत्तर है कि गर्मी में भटकने की बजाय आप घर में क्यों नहीं आराम करते। इतना कहकर वह ऐनक ठीक करता हुआ व्यस्त हो जाता है। दूसरों के दुखों में वह नहीं उलझना चाहता। शहर की इस अजनबीपन की स्थिती को भी मंगलेग डबराल कई कविताओं के माध्यम से बार बार व्यक्त करते हैं।

कवि आसमान में खूब तारे होने और अपना रास्ता याद करने की उम्मीद को बचाए हुए है। उनकी सोच और आस्था पर शहर की अमानवीयता का प्रहार पूर्णतः सफ़ल नहीं हो पाया है। मंगलेश डबराल आज के बुरे आततायी समय के चंगुल में फंसे मनुष्य की चिंता शिद्दत से करते हैं, इसलिए उनका काव्य सामान्य जन का काव्य है।

सत्ता की कुर्सी, पद, और पुरस्कार के पीछे भागनेवाले कवियों पर व्यंग्य भी मंगलेश डबराल की कविता में मिलते हैं। उन्होने ललित कार्तिकेय को दिए गए साक्षात्कार में इस संबंध में अपनी राय व्यक्त करते हुए कहा था- "मेरे लिए यह भी अबूझ चीज़ है कि किसी कवि को क्यों राज्यसभा की सदस्यता या सत्ता चाहिए? क्या उसकी कविता से उसे इतनी शक्ति नहीं मिलती कि अपने पर उसका विश्वास बना रहे? साहित्य से इतर उसे कुछ और क्या चाहिए?" मंगलेश की 'सफ़ल कवि' कविता को पढ़ते हुए निराला जी की 'मास्को डायलाग्ज'[170] कविता याद आती है।

साहित्य में असाहित्यिकों और सुविधाभोगी कवियों और लेखकों की भरमार बहुत पहले से रही है। सफल कवि वे हैं, जो उदास लोगों को देखना नहीं चाहते, आराम कुर्सियों पर बैठे मिठाई खाते हैं, कहकहे लगाते हैं।

---

[170] **निराला, हिंदी कविता, मास्को डायेलाग्स** https://hindi-kavita.com/HindiKukurmuttaSuryakantTripathiNirala.php#Kukurmutta5

"एक सफल नेता को विनम्र हाथ जोड़ रहा है

एक सफल कवि।"[171]

'घर का रास्ता' संग्रह की 'प्रेम करती स्त्री' कविता में प्रेम के जादू में डूबी स्त्री भावना में जीती है, न संसार से डरती है, न भविष्य की चिंता करती है-

"दुनिया को समझती है वह

गोद में बैठा हुआ बच्चा

निकल जाती है अकेली सड़क पर

देखती है कितना बड़ा फैला शहर

सोचती है मै रह लूंगी कहीं।"[172]

प्रेम, विषाद, अवसाद कविता के शाश्वत विषय हैं। समकालीनता से जुड़ाव के बावजूद मंगलेश डबराल ने इन विषयों को भी काव्य का कथ्य बनाया। 'प्रेमीजन' कविता अंत में जाकर प्रेम-संबंधी लोककथा में समाप्त होती है। 'घर का रास्ता' मे जो काव्य-संसार निर्मित हुआ है, वह हमारा अपना लगता है।

मंगलेश डबराल का तीसरा कविता संग्रह 'हम जो देखते है' भूमंडलीकरण एवं सर्वग्रासी उपभोक्तावाद की चपेट में फंसे मानव जीवन की त्रासदी को उजागर करते हुए मानवीयता के स्पर्श को बचाए रखने पर जोर देता है। इस भयानक त्रासद समय के कंपन पैदा करनेवाले रूप को मंगलेश मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' कविता की फैन्टेसीनुमा शैली में ही प्रस्तुत करते हे।

सफ़ल कवियों पर व्यंग्य करनेवाले मंगलेश कविता संबंधी अपनी धारणाएं 'हाशिए की कविता' शीर्षक कविता में व्यक्त करते है। 'कालातीत कवि' एवं 'नृत्य में खांसी' शीर्षक कविताओं में कवियों का घमंड एवं संस्कृति तथा सत्ता के रिश्तों पर व्यंग्य किया गया है। 'दिल्ली -दो' में सांस्कृतिक दृष्टि से खोखली भारत की राजधानी की सही तस्वीर है, जहां खूब

---

[171] **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, सफ़ल कवि, पृष्ठ 50**

[172] **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, प्रेम करती स्त्री, पृष्ठ 15**

तरक्की करना या बस में एक सीट पा जाना बहुत बड़ी उपलब्धियां है। 'हारमोनियम' कविता साहित्य, कला एवं संस्कृति के प्रति उपेक्षा भाव की ओर इंगित करती है। 'अमेरिका में कविता' और 'प्रायोजित व्यापार' कविताएँ उपभोक्तावाद पर व्यंग्य करती हैं और साथ ही मंगलेश डबराल की विनोद वृत्ति की झलक भी देती हैं, हालांकि इसके दर्शन उनकी कविता में बहुत कम होते हैं।

इस संग्रह की कुछ कविताएं गद्य का विन्यास लिए हैं, लेकिन उन्हें गद्यगीत कहना उचित नहीं होगा। शब्द-प्रयोग में संयम तथा सही शब्दों के चयन में इन कविताओं की सफ़लता का राज़ निहित है। इस गद्य-विन्यास की भी एक लय है, जिससे सजग पाठक अप्रभावित नहीं रह पाता है। एकालाप या आत्मसंवाद की तकनीक मंगलेश डबराल की कविता में प्रमुखता से प्रयुक्त हुई है।

मंगलेश डबराल के चौथे काव्य-संग्रह 'आवाज़ भी एक जगह है' में संगीत और उसके प्रभाव ने ज़्यादा जगह घेर रखी है। आज के यथार्थ को व्यक्त करने वाली दो महत्वपूर्ण कविताएं इसमें हैं। निराला और ब्रेख्त को एक साथ बैठाकर (ब्रेख्त और निराला' कविता[173]) जो संवाद करवाया गया है, वह अद्भुत है। गद्यविन्यास वाली चार कविताएं भी इसमें हैं। पुरुष की सुख-समृद्धि और परिपूर्णता में नारी के महत्वपूर्ण योगदान को रेखांकित करने वाली एक लघु आकार की किंतु गहन अर्थवत्ता से युक्त कविता भी इस संग्रह में है। पहाड़ के दो वाद्य वादक केशव अनुरागी और गुणानंद पथिक पर लिखी गई कविताएं मंगलेश के संगीत संबंधी सरोकार को तो उजागर करती ही हैं, पहाड़ के प्रति उनकी कृतज्ञता ज्ञापन तथा पहाड़ पर जलने वाली प्रतिभारूपी लालटेन की ओर भी इंगित है। गुणानंद पथिक - टिहरी क़स्बे की मुख्य सड़क पर हारमोनियम बजाकर स्वरचित गीत गाया करते थे और अपने गीतों की किताब पचास पैसे में बेचा करते थे। वे अपने गीतों में सामाजिक-आर्थिक विषमता पर चोट करते थे। कम्युनिस्ट पार्टी के जलसे उनके गायन से शुरू होते थे। समय बदला। पैसे की माया और व्यावसायिकता ने अपना जाल फैलाया। गुणानंद समय की तेज रफ़्तार में पीछे छूटते गए "तभी हारमोनियम छोड़कर गये गुणानंद पथिक अज्ञात के पथ पर, पहाड़ का लोकगीत बनकर।"[174]

---

[173] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, ब्रेष्ट और निराला, पृष्ठ 32**

[174] **वहीं, गुणानंद पथिक, पृष्ठ 30**

गढ़वाल के गीतों को शास्त्रीय आयामों तक पहुंचानेवाले ढोल-वादक केशव अनुरागी के बारे में लोग कहते थे कि वह ढोल के भीतर रहते हैअछूत होने के कारण उसे उपेक्षा सहनी पड़ी और अन्ततः "एक दिन वह मनुष्यों और देवताओं के ढोल से बाहर निकल गया, वह रहता है मृत्यु के ढोल के भीतर।"[175]

अमीर खाँ की गायन कला को कवि शब्दों के सटीक, सार्थक एवं संयमपूर्ण प्रयोग से सजीव कर देते है-

"तुम गाते थे एक चट्टान की सिहरन
पेड़ों का रूदन, बादलों की हंसी
वियोग की तरह फैली हुई रात में उड़ता अकेलापन
तुम बार-बार मनाते रहे किसी रूठे हुए प्रेम को"[176]

'संगतकार' कविता मुख्य गायक के साथ सहयोग देनेवाले गायक कलाकार की मनुष्यता को उजागर करती है। संगतकार अपने स्वर को मुख्य गायक के स्वर से ऊँचा नहीं होने देता। यह उसकी विफ़लता नहीं मनुष्यता है। अपने स्वर को दबाकर वह मुख्य गायक की सफ़लता में योगदान करता है। यहां पता चलता है कि मंगलेश डबराल न केवल प्रमुख विषयों पर कविताएं लिखते है, बल्कि ऐसे भी विषय उनकी कविता में आए हैं जिन विषयों पर शायद ही किसी कवि ने कविता लिखी होगी।

'मंगल' कविता में फैंटेसी के माध्यम से इस लड़खड़ाती दुनिया की नाटकीय तस्वीर पेश की गई है। आकार में लघु 'ख़ुशी कैसा दुर्भाग्य' शीर्षक कविता समकालीन समाज की विडंबना को मूर्त कर परिवर्तनकामी शक्तियों की अवशता के मूल कारण को रेखांकित करती है-

"जो है खूंखार हंसी है उसके पास
जो नष्ट कर सकता है, उसी का है सम्मान
झूठ फ़िलहाल जाना जाता है सच की तरह

[175] **वहीं, केशव अनुरागी, पृष्ठ 29**
[176] **वहीं, अमीर ख़ां, पृष्ठ 25**

प्रेम की जगह सिंहासन पर विराजती है घृणा

बुराई गले मिलती अच्छाई से।"[177]

'मरणोपरांत कवि' कविता निराला और मुक्तिबोध की कहानी ही नहीं कहती, उनके साथ समाज के निर्मम व्यवहार एवं उपेक्षा भाव को तीखे व्यंग्य के साथ उभारती है। 'ज्योतिष' कविता इस कपट विद्या के शिकार आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर सामान्य जन की नियति का खाका खींचती है। 'सात दिन का सफ़र' विनोद वृत्ति या क्रीडा भाव से लिखी गई कविता है।

'कवि ने कहा' मंगलेश डबराल की चुनी हुई कविताओं का संग्रह है जो 2008 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में कवि ने अपने पूर्व प्रकाशित काव्य-संग्रहों से प्रतिनिधि कविताओं का संकलन किया है। हिंदी कविता की आज की जो पीढ़ी है उसमें मंगलेश डबराल एक ऐसे समर्थ कवि हैं जिन्होंने तथाकथित सफ़ल कलाकारों तथा कवियों के सच को उघाड़कर हमारे सामने उपस्थित कर दिया है। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से एक असफ़ल माने गए इंसान को हाशिये से उठाकर केन्द्र में रख दिया है। कवि विष्णु खरे के अनुसार मंगलेश डबराल एक ऐसे विरल और सर्जक कवि हैं जिनकी कविताओं में ऐसे व्यक्तियों की आवाजों का समावेश है जिनकी आवाजों की कहीं और सुनवाई नहीं होती।[178]

'नये युग में शत्रु' मंगलेश डबराल का पाँचवा काव्य-संग्रह है जो 2013 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में 63 कविताएँ हैं। इतने लम्बे अंतराल के बाद प्रकाशित इस काव्य संग्रह में कवि 21वीं सदी के शत्रुओं की जाँच-पड़ताल बड़े ही तीखे स्वर में करते हुए नजर आते हैं। आवारा मुद्रा, भूमण्डलीकरण, अमेरिकीकरण आदि विषयों पर कटाक्ष करते हुए कवि मंगलेश डबराल इस संग्रह के साथ उपस्थित हुए हैं। आज की भयावह व्यवस्था के ख़िलाफ़ विरोध करना प्रत्येक साहित्यकार का दायित्व है और वो दायित्व मंगलेश डबराल भी बख़ूबी निभाते दिखते हैं। आज हमारे देश में सांप्रदायिकता और बाज़ारवाद की कई समस्याएं हैं जिनका ज़िक्र पिछले अध्याय में किया गया है। आज समाज में मानवता का कोई मूल्य ही नहीं बचा है। सब लोग अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए एक-दूसरे को मार रहे हैं। इसका भयावह रूप हम गुजरात में देख चुके हैं। बीसवीं सदी में लिखी गई प्रसिद्ध कविता 'गुजरात के मृतक का बयान' इसी

---

[177] **वहीं, खुशी कैसा दुर्भाग्य, पृष्ठ 88**

[178] **डबराल मंगलेश, 'कवि ने कहा' संग्रह के फ्लैप से**

कविता संग्रह में संकलित है। हम यूं कह सकते हैं कि यह मानवीय स्मृति को बचाए रखने का मंगलेश डबराल का एक प्रयास है। गुजरात की इसी भयावहता का चित्रण कवि बेबाक रूप से करते हुए लिखते हैं -

"मेरी औरत मुझसे पहले ही जला दी गयी
वह मुझे बचाने के लिए मेरे आगे खड़ी हो गई थी
और मेरे बच्चों को मारा जाना तो पता ही नहीं चला
वे इतने छोटे थे उनकी कोई चीख भी सुनाई नहीं दी"[179]

मंगलेश डबराल असाधारण संतुलन के कवि है। उनकी कविताएँ ऊपर से शांत व संयमित दिखने वाली है लेकिन अन्दर से वे घोर हलचल पैदा करती है। वे मनुष्य के अन्तस को झकझोर कर रख देती है। आज की पूँजीवादी व्यवस्था जो अधिक से अधिक संग्रह करना व स्वामित्व की भावना से युक्त हैं, ऐसी व्यवस्था के ख़िलाफ़ कवि आवाज उठाते हैं, जो इस संग्रह की कविताओं में साफ़ सुनाई देती है। ऐसी ही ताकतों पर व्यंग्य रूप में प्रहार करते हुए कवि अपनी 'ताकत की दुनिया' कविता में लिखते हैं-

"ताकत की दुनिया में जाकर मैं क्या करूँगा
मैं सैंकड़ो हज़ारों जूते चप्पल लेकर क्या करूँगा
xxxxxxxxx
सब कुछ छीनकर किसी को क्यों भेजूंगा पाताल ।"[180]

कवि को अवसरवादिता से परहेज है। कवि शासन व्यवस्था के ख़िलाफ़ आक्रोश में नज़र आते है। वे कहते हैं कि शासक अपने अलग-अलग रूप बदलते रहते है लेकिन उनका अत्याचार कभी खत्म नहीं होता। वे देश को तरक्की के नाम पर पतन की ओर ले जाते हैं। ग़रीबों के हितैषी होने का दिखावा करके उन्हें अपार कष्ट देते हैं। इस सन्दर्भ में कवि अपने इस संग्रह की कविता 'हमारे शासक' में लिखते हैं।

---

[179] **डबराल मंगलेश, नये युग में शत्रु, गुजरात के मृतक का बयान, पृष्ठ 52-53**
[180] **वहीं, ताकत की दुनिया, पृष्ठ 36**

अतः 'पहाड़ पर लालटेन' काव्य-संग्रह से लेकर 'आवाज़ भी एक जगह है' काव्य संग्रह में जिस आवाज़ को लेकर वे उपस्थित होते हैं, उस स्वर को पूरे उग्रतम रूप में इस काव्य-संग्रह में देखा जा सकता है। मंगलेश डबराल की सबसे अधिक प्रभावित करने वाली कविताओं के बारे में जब आलोचक रविभूषण जी से पूछा गया, तब उन्होंने इसी संग्रह की अत्याधिक तारीफ़ की। आलोचक रविभूषण के अनुसार 'नए युग में शत्रु' संग्रह की कविताओं में समय की जो पहचान और पकड़ है, वह अद्भुत है। वे इस संदर्भ में कहते हैं - "मंगलेश ने नए युग में शत्रु में बदलाव देखा। अब शत्रु पहले की तरह शत्रु नहीं रहें। उन्हें पहचानना और समझना कठिन हुआ। पहले शत्रु शत्रु की तरह दिखता था, अब बहुत संभव है, वह मित्र की तरह भी दिखे"[181]

आलोचक असद ज़ैदी इस कविता संग्रह के बारे में लिखते हैं कि "ये इक्कीसवीं सदी से आंख मिलाती हुई वे कविताएं हैं जिन्होंने बीसवीं सदी को देखा है।" इसमें नयापन भी है और पुरातन का भी वास है।[182]

इस बात को मंगलेश डबराल के समकालीन कई आलोचकों द्वारा स्वीकार किया गया है कि मंगलेश डबराल अपने सभी समकालीन कवियों में 'कहन' की दृष्टि से भिन्न है। काव्य-वस्तु तो प्रायः कई कवियों में समान है, कतिपय भिन्नताओं के बावजूद। पर मंगलेश डबराल ने अपनी एक नई काव्य-शक्ति विकसित की है, जो उन्हे अन्य कवियों से अलग करती है।[183] जिस प्रकार कवि शमशेर बहादुर सिंह की 'शमशेरियत' की चर्चा होती रही है उसी प्रकार मंगलेश डबराल की 'मांगलेशियत' असामान्य और अद्वितीय है। कविता कहने का एक अलग ढंग जो उनका निजी और विशिष्ट ढंग है, यही 'मंगलेश की मंगलेशियत' है।

'स्मृति एक दूसरा समय है' मंगलेश डबराल का छठा कविता संग्रह है। यह उनके जीवन काल में, 2020 में प्रकाशित उनका आख़िरी संग्रह है। जैसे कि इस संग्रह का नाम है, इसकी कविताएं भी स्मृतियों से भरी हैं। मंगलेश डबराल के तमाम कविता संग्रहों में स्मृति को एक मज़बूत सहारे के रूप में लिया गया है। कवि अपने अनुभवों को, अपनी स्मृतियों को अपनी कविताओं के माध्यम से तरह तरह के बिंब और प्रतीकों द्वारा उन्हें मूर्त रूप देने की चेष्टा करते हैं। उसका एक

[181] **आलोचक रविभूषण जी से बातचीन के दौरान**

[182] **डबराल मंगलेश, 'नए युग में शत्रु' कविता संग्रह के फ्लैप से**

[183] **आलोचक रविभूषण जी से बातचीन के दौरान**

उदाहरण है - कविता 'मदर डेयरी', जो डॉ. वर्गीज़ कूरियन को याद करती है जिन्होंने गुजरात के आणंद में सहकारिता के ज़रिए भारत को 'सबसे ज़्यादा दूध पैदा करने वाले देश में बदल दिया'।[184] 'पिता का चश्मा', 'मां का नमस्कार', 'शहनाइयों के बारे में बिस्मिल्लाह ख़ान', 'मुक्तिबोध स्मृति', 'तस्वीर' आदि ऐसी ही स्मृति से जुड़ी कविताएं हैं। बाक़ी संग्रहों की तुलना में इस संग्रह की कविताओं में एक प्रकार से गद्यात्मकता नज़र आती है।

जिस पहाड़ के विषय को लेकर उनकी काव्य यात्रा शुरू हुई थी, वह पहाड़ इस आखिरी संग्रह में भी मौजूद है। दिल्ली जैसे शहर में पचास वर्ष बिताकर और विदेशी यात्राएं करने के पश्चात भी कवि अपने गांव की स्मृतियों को, अपने घर को, अपने बचपन को याद करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि वे अपनी जड़ों को कभी नहीं भूले।

उनकी कविताओं को पढ़ते वक्त और उनके बारे में समकालीन कवि तथा आलोचकों के मतों से यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि उन्होंने किसी सम्मान या पुरस्कार के लालच में कविताएं नहीं लिखी। वे खुद कहते हैं कि "मुझे अपनी कोई भी कविता अच्छी नहीं लगती है। कुछ अच्छी कविता वह लगती है जिसमें यथार्थ विश्वसनीय ढंग से प्रकट हुआ हो।"[185]

उनके आखिरी कविता संग्रह में मूलतः राजनैतिक विरोध है। साल 2015 में देश में बढ़ रहे फासीवाद और सरकार की अकर्मण्यता के विरोध में मंगलेश डबराल और राजेश जोशी ने देश के प्रतिष्ठित साहित्य अकादमी पुरस्कार को लौटा दिया। दादरी घटना, कन्नड़ लेखक एम कलबुर्गी की हत्या और देश में 'असहिष्णुता की बढ़ती संस्कृति' के विरोध में अकादमी की चुप्पी पर अब तक 15 साहित्यकार अकादमी से इस्तीफ़ा दे चुके हैं या अपना पुरस्कार लौटा चुके हैं।[186]

वे अवसाद के कवि है यह काफ़ी रटी रटाई बात है परंतु उनके गहरे अवसाद में और भी गहरी चिंता छिपी है। वे उन स्थितियों के बारे में भी चिंता व्यक्त करते हैं जो अभी तक भले ही ज्वलंत रूप से न उभरी हो परंतु भविष्य में अत्याधिक कष्ट देने की क्षमता रखती हैं। वे अपनी कविताओं के शब्द कुछ इस तरह से चुनते हैं जिन्हे पढ़कर पाठक की संवेदना जाग उठती है और वह इन विषयों पर विचार करने के लिए मज़बूर हो जाता है।

[184] **डबराल मंगलेश, 'स्मृति एक दूसरा समय है' कविता संग्रह के फ्लैप से**

[185] **डबराल मंगलेश, उपकथन: पंद्रह संवाद, अवधेश श्रीवास्तव से बातचीत, पृष्ठ 156**

[186] **नवभारत टाइम्स में छपी ख़बर से प्राप्त जानकारी,** https://navbharattimes.indiatimes.com/india/manglesh-dabral-and-rajesh-joshi-join-protest-return-sahitya-academy-award/articleshow/49317988.cms

मंगलेश डबराल की कविताएं सामान्य जन की कविताएं है हालांकि वे इसे अपनी और अन्य कई समकालीन कवियों की सीमा मानते है कि कविता की भाषा हर कोई नही समझ सकता। सामान्य बोलचाल की भाषा और कविता की भाषा में जो अंतर है, जो दूरी है, उसे इस भाषा द्वारा पाटना संभव नहीं है। जिस भाषा में मंगलेश डबराल और अन्य कवि मज़दूरों तथा शोषितों के लिए आशावादी कविताएं लिखते हैं, उस भाषा को वह मज़दूर ही नहीं समझ पाता। इस बात का उन्हें अफ़सोस है ऐसा उन्होंने एक साक्षात्कार के दौरान बताया था।[187]

मंगलेश डबराल को मूलतः नक्सलवादी आंदोलन से जोड़ा जाता है परंतु जैसा कि हमने द्वितीय अध्याय में देखा, उनपर कई विचारधाराओं का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। लिखते समय वे किसी विचारधारा के दबाव में नहीं लिखते। जब रचना पूरी हो जाती है, तब समीक्षकों द्वारा तथा आलोचकों द्वारा किसी न किसी विचारधारा से उन्हें जोड़ा जाता है। वे स्वयं इस विषय में कहते हैं कि "मुझे यह मुमकिन नहीं लगता है कि लिखते हुए लगता रहे कि विचारधारा लिख रहा हूं। लिखना तभी हो पाता है जब विचारधारा और संवेदना एकाकार हो गई हो।"[188]

साल 2020 में कोरोना संक्रमण से कवि मंगलेश डबराल की मृत्यु हुई। 'स्मृति एक दूसरा समय है' भले ही उनके जीवन काल में प्रकाशित आखिरी कविता संग्रह है, पंरतु उनकी श्रमशील रचनात्मकता की स्मृति में उनके मरणोपरांत भी एक कविता संग्रह राजकमल प्रकाशन द्वारा पिछले ही साल (2023 में) प्रकाशित किया गया है। उनके इस कविता संग्रह का शीर्षक है 'पानी का पत्थर'।

जो कविताएं इस संग्रह में संकलित हैं, उन कविताओं को वे शायद और अधिक विस्तार देते या फिर उसमें कुछ और जोड़ते। इसमें से लगभग सभी कविताएं अपूर्ण हैं, लेकिन "अपने मौजूदा स्वरूप में भी उन्हें सम्पूर्ण कहा जा सकता है।"[189] इस कविता संग्रह को प्रकाशित करने के पीछे मूल उद्देश्य उनकी रचना प्रक्रिया को जानना और उनके कविकुशल के बारे में सोचना है।

---

[187] **डबराल मंगलेश, उपकथनः पंद्रह संवाद, ललित कार्तिकेय से बातचीत, पृष्ठ 15**

[188] **डबराल मंगलेश, उपकथनः पंद्रह संवाद, अवधेश श्रीवास्तव से बातचीत, पृष्ठ 157**

[189] **डबराल मंगलेश, 'पानी का पत्थर' कविता संग्रह के फ्लैप से**

इस संग्रह में कई शीर्षकहीन कविताएं भी संकलित है जो काफ़ी रोचक और रहस्यमय हैं। इस संग्रह की कुछ कविताओं का आकार बहुत छोटा है और उनके अपूर्ण होने की संभावना से पाठक के मन में यह जिज्ञासा ज़रूर उत्पन्न होती हैं कि वे आगे क्या लिखते और किस तरह से इस कविता को पूर्ण रूप देते। जिन्होंने उनको पढ़ा हैं, उनके लिए यह एक चुनौती भरा कार्य हो सकता है। मेरा अनुभव कुछ कविताओं को लेकर ऐसा ही रहा। उनकी एक कविता है 'हमारी हिंदी' -

"हमारी हिंदी
हिंदी में मृत्यु के बाद भी
याद नहीं रहता जन्मदिन"[190]

इस कविता में कवि आख़िर क्या कहना चाहते है इसका अंदाज़ा लगा पाना मुश्किल हैं। ऐसी ही एक और कविता है जिसका कोई शीर्षक नहीं है -

"आज़ादी
मेरे चेहरे पर
पूरी चौबीस कीलें
ठोंक कर चली गई"[191]

ऐसी कई सारी कविताएं इस संग्रह में मौजूद हैं।

इस कविता संग्रह के बारे में यह चीज़ गौर करने लायक है कि जो चीज़ हमें बहुत ज़्यादा पसंद होती है, उस चीज़ से हम कभी नहीं उबते भले ही हमने उस चीज़ को कितना भी देखा, परखा, मेहसूस किया क्यों न हो। उसके प्रति एक जिज्ञासा, एक उत्सुकता हमेशा बनी रहती है। मंगलेश डबराल की कविताएं भी कुछ इसी प्रकार हैं। वे जीवित होते तो और बहुत कुछ लिखते। उनके सच्चे और ईमानदार पाठक उनको लगातार पढ़ना चाहते हैं। ऐसे पाठकों के लिए यह मरणोपरांत प्रकाशित कविता संग्रह पूंजी के समान हैं।

---

[190] **डबराल मंगलेश, पानी का पत्थर, हमारी हिंदी, पृष्ठ 76**
[191] **वहीं, शीर्षाकहीन कविता, पृष्ठ 91**

इन तमाम बातों को केंद्र में रखते हुए कहा जा सकता है कि मंगलेश डबराल समकालीन हिंदी कविता में ही नहीं बल्कि पाठकों और उनके समकालीनों के हृदय में अपना विशिष्ठ स्थान रखते हैं। वे विशेष रूप से अपनी लेखन शैली, चित्रात्मकता और विचारधारा के कारण अपनी एक अलग पहचान रखते हैं और अपने व्यक्तिव के कारण भी बहुत याद किए जाते हैं।

आलोचकों, कवियों तथा मित्रों के मत

1. आलोचक नामवर सिंह

   आलोचक नामवर सिंह 'आलोचना' त्रैमासिक पत्रिका के प्रधान संपादक थे। उनके संपादन में 'आलोचना' का बहुत सम्मान था और उसमें किसी की रचना का प्रकाशित होने का अर्थ था, साहित्य में स्वीकृति की मुहर[192]। उन्होंने ही 'आलोचना' में मंगलेश डबराल की कविता प्रकाशित की और वहा से उनके लेखन कार्य की वास्तविक शुरुआत हुई।

2. कवि भारत भूषण अग्रवाल

   जब मंगलेश डबराल दिल्ली पहुंचे, तब साहित्य अकादेमी के तत्कालीन उपसचिव और नयी कविता के एक प्रमुख कवि के रुप में भारत भूषन अग्रवाल की पहचान थी। उन्होंने ने ही मंगलेश डबराल की कुछ कविताओं को पढ़कर उनसे कहा कि "अरे, आप अपनी कवितायें मुझे दीजिये। मैं उन्हें 'आलोचना' में छपवाऊंगा!"[193] उन्होंने कवि मंगलेश डबराल को आगे कविताएं लिखते रहने की प्रेरणा दी।

3. कवि अशोक वाजपेयी

---

[192] **डबराल मंगलेश, नामवर सिंह : हिंदी के 'नामवर' यानी हिंदी के प्रकाश स्तंभ (लेख),**
https://www.bbc.com/hindi/india-47301596
[193] **वहीं "**

अकविता के दौर में जब मंगलेश डबराल ने धूमिल जैसे बड़े कवियों से प्रभावित होकर कुछ वैसी ही कविताएं लिखना प्रारंभ किया था, तब उनकी कविता को पढ़कर कवि अशोक वाजपेयी ने इनकी कड़ी आलोचना की थी। पर बाद में जैसे ही मंगलेश डबराल ने अकविता का रास्ता छोड़कर स्वतंत्र रूप से लेखन कार्य शुरू किया, तब वे उनके प्रशंसक बने। मंगलेश डबराल के विषय में वे कहते हैं कि "मंगलेश मानवीय सहवेदना के कवि हैं। उनके यहां भागीदारी और साझेदारी का भाव बहुत केंद्रीय है। मंगलेश जीवन में कई छूटी हुई चीजों के कवि हैं। वे साधारण के संघर्ष, सौंदर्य, संभावना और साहस के कवि हैं। उन्होंने अभिव्यक्ति के बहुत खतरे उठाए और निडर और निर्भीक रहे।"[194] कवि अशोक वाजपेयी ने मंगलेश डबराल के गद्य संकलन 'सिर्फ़ यही थी मेरी उम्मीद' की भूमिका में लिखा है कि उनकी चिंता एक तरफ़ मानवीयता बचाए रखने की थी तो दूसरी तरफ़ हमारे साधारण सामान्य जीवन में हर तरह से उम्मीद के हाशिए खोजने की थी।[195]

4. कवयित्री शुभा

कवयित्री शुभा ने मंगलेश डबराल की कविता को हिंदी संसार को अधिक मानवीय और अधिक न्यायसंगत बनाने वाला बताते हुए कहा कि उनकी मानवीयता उनके आशावाद से घुली मिली है। वे क्रूरता, कट्टरपन, अमानवीयता के सतत और दृढ़ विरोधी रहे, पर इसके साथ ही वे मानवीय मूल्यों और चीजों को सहेजने का काम भी करते रहे, जैसा स्त्रियां करती हैं। शुभा ने कहा, उनके पास स्त्री का दिल था। वे मानवीय मूल्यों की पक्षधरता के मामले में समझौताविहीन कवि थे, लेकिन उनमें उतनी ही करुणा भी थी।[196]

5. कवि पंकज चतुर्वेदी

---

[194] **मिश्र रत्नेश, सहवेदना और साहस के कवि थे मंगलेश : अशोक वाजपेयी,**
https://www.amarujala.com/kavya/halchal/manglesh-was-a-poet-of-compassion-and-courage-said-ashoka-vajpayee

[195] **डबराल मंगलेश, सिर्फ़ यही थी मेरी उम्मीद, भूमिका**

[196] **मिश्र रत्नेश, सहवेदना और साहस के कवि थे मंगलेश : अशोक वाजपेयी,**
https://www.amarujala.com/kavya/halchal/manglesh-was-a-poet-of-compassion-and-courage-said-ashoka-vajpayee

मंगलेश डबराल की प्रतिनिधि कविताओं के संग्रह के संपादक रहे कवि पंकज चतुर्वेदी कहते है, मंगलेश जूझने वाले कवि थे। उनमें प्रतिबद्धता की दृढ़ता थी। साथ ही उनके हृदय में कोमलता भी थी। उनकी कविता ने दिखाया कि यह परस्पर विरोधी नहीं है। उनकी कविता दबी कुचली, अन्याय का शिकार, जनता की पुकार है। उनके स्वभाव में अत्याचार, अन्याय के ख़िलाफ़ संघर्ष की चेतना थी। उन्होंने सफ़लता नहीं, सार्थकता को स्पृहणीय बनाया।[197]

6. कवि रघुवीर सहाय

रघुवीर सहाय ने मंगलेश डबराल के संग्रह, 'घर का रास्ता' की समीक्षा में स्पष्ट रूप से कहा कि उनकी "...कविताएँ...मनुष्य को अपने तरीके से संघर्ष में संलग्न होने का चित्रण करती हैं।"[198]

7. कवि विष्णु खरे

कवि विष्णु खरे और कवि मंगलेश डबराल का मैत्री का संबंध रहा है। मंगलेश डबराल के अनुसार वे कबीर, निराला और मुक्तिबोध जैसे बड़े कवियों के बाद हिंदी के आखिरी मूर्तिभंजक थे।[199]उनके मत से आज की हिंदी कविता में मंगलेश डबराल की कलात्मक और नैतिक अद्वितीयता इस बात में है कि अपनी शीर्ष उपस्थिति और स्वीकृति के बावजूद उनकी आवाज़ में उन्हीं के 'संगतकार'[200] की तरह एक हिचक है, अपने स्वर को ऊंचा न उठाने की कोशिश है, लेकिन हम जानते हैं वे ऐसे विरल सर्जक हैं जिनकी कविताओं में उनकी आवाजें भी बोलती - गूंजती हैं जिनकी आवाज़ों की सुनवाई कम होती है।[201]

[197] **वहीं "**

[198] **अपूर्वानंद, मंगलेश डबराल : एक कवि जिसका उदेश्य एक सरल वाक्य... (मूल लेख अंग्रेज़ी में)**
https://m.thewire.in/article/the-arts/manglesh-dabral-poet-tribute

[199] **न्यूज डेस्क, अमर उजाला (नई दिल्ली), कवि विष्णु खरे के निधन पर मंगलेश डबराल और गिरधर राठी के संस्मरण**
https://www.amarujala.com/india-news/memoirs-of-manglesh-dabral-and-girdhar-rathi-vith-late-vishnu-khare

[200] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, संगतकार, पृष्ठ 14**

[201] **'जनसत्ता' में प्रकाशित समीक्षा से**

8. आलोचक रविभूषण

आलोचक रविभूषण कवि मंगलेश डबराल के क़रीबी मित्र रह चुके हैं और उनकी सभी कविताओं को पढ़ चुके हैं। वे ख़ुद इस बात को स्वीकार करते हैं कि उन्होंने मंगलेश डबराल पर ही सबसे अधिक लिखा है। उनके अनुसार मंगलेश डबराल की पहले की कविताओं में हमारे समय का यथार्थ तो है ही, पर बाद की कविताओं में एक तीक्ष्ण धार है, स्पष्ट कथन है, स्टैंड है, असहमति है और एक नए प्रकार का प्रतिरोध।[202]

9. समीक्षक प्रयाग शुक्ल

कवि, कथाकार और कला-समीक्षक के रूप में प्रतिष्ठित प्रयाग शुक्ल के अनुसार मंगलेश डबराल की कविताओं में एक प्रकार का दुख है परन्तु यह दुख मूल्यवान है क्योंकि उसमें बहुत कुछ बचाने की चेष्टा है। वे कहते हैं कि मंगलेश डबराल के काव्य में एक पारदर्शी ईमानदारी है और अपनी निजी स्थिति का एक साक्षात्कार भी है। उनके अनुसार बहुत सामान्य सी लगने वाली चीज़ों को भी उन्होंने काफ़ी मर्मभेदी ढंग से अपनी कविताओं में प्रस्तुत किया है।[203]

10. आलोचक हरीश त्रिवेदी

विश्व प्रसिद्ध आलोचक-अनुवादक हरीश त्रिवेदी का हिंदी साहित्य से गहरा नाता रहा है, वह हिंदी में भी लिखते रहें हैं। मंगलेश डबराल से उनकी भाईचारे की मैत्री रही है। वे अपने संस्मरण में लिखते हैं - "हिंदी जगत में मंगलेश डबराल का कवि के रूप में अनन्य स्थान था यह तो पहले से ही सर्वविदित था पर अपने स्वभाव व व्यक्तित्व के कारण वे कितने लोकप्रिय थे, बल्कि हर-दिल अज़ीज़, यह उनके पिछले वर्ष (2020) कोरोना-कवलित होने के बाद अधिक प्रकाश में आ रहा है। मेरा सौभाग्य था कि उनसे मित्रता रही। सहकर्मियों जैसी

[202] **आलोचक रविभूषण जी से बातचीन के दौरान**

[203] **डबराल मंगलेश, 'घर का रास्ता' कविता संग्रह के फ्लैप से**

रोज़ की घनिष्ठता भले न रही हो और न ही उनके साथ के हिंदी लेखकों जैसा आपसी भाईचारा, पर गाहे-बगाहे उनसे हुई अनेक मुलाकातों में सहज अंतरंगता का एक धागा था जो हमें लगातार बाँधे रहा।"[204]

11. पत्रकार रवींद्र त्रिपाठी

पत्रकार और समीक्षक रवींद्र त्रिपाठी के अनुसार मंगलेश सामाजिक प्रतिबद्धता के कवि थे जो समाज में हो रहे उन बदलावों को लक्षित करते हैं जिनको अमानवीय ताक़तें प्रोत्साहित और प्रेरित कर रही हैं। पिछले कुछ बरसों में शायद ही कोई ऐसा मसला हो जिनको लेकर उन्होंने सार्वजनिक तौर पर अपनी पक्षधरता न दिखाई हो।[205] उनके अनुसार "मंगलेश डबराल स्मृति को कल्पना में बदलते हैं और कविता की 'उच्चतर' राजनीति को निर्मित करते हैं।"[206]

निष्कर्ष

मंगलेश डबराल एक ऐसे कवि, साहित्यकार हैं जिन्होंने अपने साहित्य में मनुष्य के चारों ओर के संसार में व्याप्त असंख्य विडम्बनाओं और उनमें जीने को अभिशप्त मनुष्य की परिस्थितियों को उजागर किया है। उन्होंने आधुनिक सभ्यता के भयावह, अन्तर्विरोधों, जटिलताओं के बीच जीते हुए आज के मानव के अस्तित्वगत मूलभूत संकट और मानसिक संताप को भाषा देने का यत्न किया है। उनके साहित्य का फलक अत्यन्त विस्तृत है। उनके साहित्य से किसी का भी प्रभावित होना स्वाभाविक है क्योंकि उसमें नवीनता है। मंगलेश डबराल विचारों से प्रतिबद्ध कवि है। उन्होंने जो देखा वह लिखा । वे पूर्ण स्वाभाविकता के साथ देश एवं समाज की ज्वलंत समस्याओं का मार्मिक चित्रण करते हैं। इनकी कविताओं में दुखी व्यक्तियों का दुख समाहित है। इनके साहित्य की शक्ति इतनी तीव्र है कि वह सीधे हृदय पर वार करती

[204] **देव अरुण, मंगलेश डबराल: तीन प्रसंग, दो पाठ: हरीश त्रिवेदी, समालोचन, https://samalochan.com/harish-trivedi/**

[205] **त्रिपाठी रवींद्र, सत्य हिंदी, स्मृतिहीनता के दौर में स्मृति के लिए सजग एक कवि (लेख)**
https://m.satyahindi.com/article/obituary/remembering-manglesh-dabral/115277

[206] **डबराल मंगलेश, 'स्मृति एक दूसरा समय है' कविता संग्रह के फ्लैप से**

है। महानगरों के भीड़ भरे जीवन, गरीबों के दुख-दर्द का मार्मिक चित्रण सहजता के साथ हृदय को छू लेता है। उनके समय के अन्य समकालीन कवियों से वे कई अर्थों से भिन्न और विशिष्ट हैं।

संदर्भ

आधार ग्रंथ

1) डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, राधाकृष्ण प्रकाशन (दिल्ली), संस्करण 2021
2) डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन (दिल्ली), संस्करण 2022
3) डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, राधाकृष्ण प्रकाशन (दिल्ली), संस्करण 1997
4) डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, वाणी प्रकाशन (नयी दिल्ली), संस्करण 2004
5) डबराल मंगलेश, कवि ने कहा, किताबघर प्रकाशन, संस्करण 2008
6) डबराल मंगलेश, नए युग में शत्रु, राधाकृष्ण प्रकाशन (नयी दिल्ली), संस्करण 2013
7) डबराल मंगलेश, स्मृति एक दूसरा समय है, सेतु प्रकाशन - दिल्ली, संस्करण 2020
8) डबराल मंगलेश, पानी का पत्थर, राजकमल प्रकाशन (नयी दिल्ली), संस्करण 2023

सन्दर्भ ग्रन्थ

1) डबराल मंगलेश, उपकथन : पंद्रह संवाद, आधार प्रकाशन - हरियाणा, संस्करण 2014
2) मिश्र (डॉ) सरजू प्रसाद, समकालीन हिंदी कविता के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर, अमन प्रकाशन (कानपुर), संस्करण 2011
3) डबराल मंगलेश, सिर्फ़ यही थी मेरी उम्मीद, वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली, संस्करण 2021

अंतर्जाल सन्दर्भ

1) मिश्र रत्नेश, सहवेदना और साहस के कवि थे मंगलेश : अशोक वाजपेयी (लेख), जनवरी 2021
https://www.amarujala.com/kavya/halchal/manglesh-was-a-poet-of-compassion-and-courage-said-ashoka-vajpayee

2) अपूर्वानंद, मंगलेश डबराल: एक कवि जिसका उदेश्य एक सरल वाक्य... (मूल लेख अंग्रेज़ी में), दिसंबर 2020
https://m.thewire.in/article/the-arts/manglesh-dabral-poet-tribute

3) डबराल मंगलेश, नामवर सिंह: हिंदी के 'नामवर' यानी हिंदी के प्रकाश स्तंभ (लेख), फ़रवरी 2019
https://www.bbc.com/hindi/india-47301596

4) निराला, हिंदी कविता,
https://hindi-kavita.com/HindiKukurmuttaSuryakantTripathiNirala.php#Kukurmutta5

5) न्यूज डेस्क, अमर उजाला (नई दिल्ली), कवि विष्णु खरे के निधन पर मंगलेश डबराल और गिरधर राठी के संस्मरण, सितंबर 2018
https://www.amarujala.com/india-news/memoirs-of-manglesh-dabral-and-girdhar-rathi-vith-late-vishnu-khare

6) नवभारत टाइम्स, मंगलेश डबराल और राजेश जोशी ने भी लौटाया साहित्य अकादमी पुरस्कार, अक्टूबर 2015
https://navbharattimes.indiatimes.com/india/manglesh-dabral-and-rajesh-joshi-join-protest-return-sahitya-academy-award/articleshow/49317988.cms

7) दी टाइम्स ऑफ इंडिया, अब मंगलेश डबराल, राजेश जोशी ने साहित्य अकादमी पुरस्कार लौटाया, (मूल लेख अंग्रेज़ी में), अक्टूबर 2015

https://timesofindia.indiatimes.com/india/now-mangalesh-dabral-rajesh-joshi-return-sahitya-akademi-award/articleshow/49318094.cms#google_vignette

8) देव अरुण, मंगलेश डबराल: तीन प्रसंग, दो पाठ: हरीश त्रिवेदी, समालोचन, दिसंबर 2021

https://samalochan.com/harish-trivedi/

9) त्रिपाठी रवींद्र, सत्य हिंदी, स्मृतिहीनता के दौर में स्मृति के लिए सजग एक कवि (लेख), दिसंबर 2020

https://m.satyahindi.com/article/obituary/remembering-manglesh-dabral/115277

पंचम अध्याय

मंगलेश डबराल की काव्य भाषा

काव्य भाषा - एक परिचय

भाषा एक ऐसी चीज है जो मानवीय भावों और विचारों को अभिव्यक्त करती है। डॉ० रामप्रकाश के अनुसार - "भाषा शब्द की संरचना संस्कृत की 'भाष्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है - बोली गई या बोली जाने वाली।" इस आधार पर भाषा वह है जो बोली जाती है।[207]

भाषा केवल बोली नहीं जाती बल्कि भाषा हमारे अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम भी है। आचार्य कामताप्रसाद गुरु के अनुसार "भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली-भाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार स्पष्टतः समझ सकता है।"[208] यहां पर एक चीज़ ध्यान देने लायक है कि सामान्य बोलचाल या दैनिक जीवन में जिस भाषा का प्रयोग हम करते हैं, उसे सामान्य बोलचाल की भाषा कहा जाता है। इस अध्याय में काव्यभाषा का अध्ययन किया गया है जिसका प्रयोग सर्जनात्मक रचना के लिए किया जाता है।

समकालीन काावियों की एक प्रमुख विशेषता यह रही है कि उन्होंने अपनी काव्य-रचना के लिए आधुनिक भाषा का प्रयोग किया है। किसी भी युग में परंपरा से हटकर किया गया कोई भी काम आधुनिक होता है। डॉ. रांगेय राघव परिवर्तन को 'आधुनिक' कहते हैं।"[209] डॉ. सुरेशचंद्र गुप्त 'आधुनिक' शब्द को नवीन दृष्टिकोण का वाहक मानते हैं।[210]

यदि काव्य भाषा की बात की जाए, तो काव्यभाषा कविता के जन्म लेने की भाषा है। वह इसी अर्थ में सर्जन है क्योंकि उसमें और "उसके द्वारा ही कविता उत्पन्न होती है"।[211] काव्यभाषा की परिभाषा देना कठिन है। एक प्रकार से कहा जा

---

[207] **रामप्रकाश (डॉ.), मानक हिन्दी संरचना एवं प्रयोग, सन्मार्ग प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2000, पृष्ठ 11**

[208] **गुरु (आचार्य) कामताप्रसाद, हिंदी व्याकरण, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृष्ठ 19**

[209] **रांगेय (डॉ.) राघव, आधुनिक हिंदी कविता में विषय और शैली, पृष्ठ 18**

[210] **गुप्त (डॉ.) सुरेशचंद्र, आधुनिक हिंदी कवियों के काव्य सिद्धांत, हि. सा. संसार, दिल्ली, पृष्ठ 18, संस्करण 1960**

[211] **सत्यप्रकाश (डॉ.) मिश्र (संपादक), काव्य भाषा पर तीन निबंध : रामस्वरूप चतुर्वेदी, पुस्तक की प्रस्तावना से, पृष्ठ 5**

सकता है कि काव्यभाषा को परिभाषित करना, अपनी ही दृष्टि को सीमित करना है। "काव्यभाषा अर्थ की सीमा को बांधती नहीं है बल्कि अर्थ की अनंत संभावनाओं की ओर संकेत करती है।"[212]

प्रख्यात आलोचक डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के आलोचनात्मक चिंतन का प्रमुख प्रतिमान काव्यभाषा रही है। उनके अनुसार काव्यभाषा का ऊपरी ढांचा समय में परिवर्तन के साथ सर्वत्र ही बदलता है।[213]

किसी भी रचना की तरह काव्य भाषा के प्रमुख शिल्प तत्त्व शब्द, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक, छंद आदि होते हैं। परंतु नई कविता के युग में लिखे 'काव्यभाषा का स्वरूप' निबंध में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि आज जब कविता के सभी परंपरागत भेदक लक्षण, तुक, छंद, अलंकरण, लय और शायद सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व रस भी धीरे-धीरे विलुप्त हो चले हैं, तो काव्यभाषा ही वह अंतिम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आधार शेष रह जाता है, जिसके सहारे कविता के संघटन को समझने की चेष्टा हो सकती है।[214]

अतः भाषा का मूल कार्य सम्प्रेषण है, जिसका सीधा संबंध कला अर्थात् संरचना के साथ होता है। भाषा नित्य परिवर्तनशील होने के कारण प्रत्येक युग में उसका स्वरूप बदलता रहा है और उसमें कुछ नवीन तत्त्व भी जुड़ते गए हैं। एक ही रचनाकार की काव्य भाषा भी समय के साथ काफ़ी हद तक प्रभावित होती है ओर उसमें एक नयापन देखा जाए सकता है। समकालीन कविता के दौर में भले ही कई सारी कविताओं की रचना हुई है, परंतु हर कवि की काव्य-भाषा में कोई न कोई अंतर ज़रूर होता है। इसलिए कवि के युगीन परिवेश को जानने के साथ-साथ उसके काव्य भाषा के स्वरूप को भी जानना बेहद ज़रूरी होता है। आगे मंगलेश डबराल की काव्य-भाषा पर उनके सातों कविता संग्रहों के अध्ययन के आधार पर चर्चा की गई है।

मंगलेश डबराल की काव्य भाषा का स्वरूप

212 सत्यप्रकाश (डॉ.) मिश्र (संपादक), काव्य भाषा पर तीन निबंध : रामस्वरूप चतुर्वेदी, पुस्तक की प्रस्तावना से पृष्ठ 6

213 चतुर्वेदी रामस्वरूप, काव्य भाषा पर तीन निबंध, हिंदी काव्यभाषा के अध्ययन की समस्याएं (निबंध), पृष्ठ 64

214 चतुर्वेदी रामस्वरूप, काव्य भाषा पर तीन निबंध, काव्यभाषा का स्वरूप (निबंध), पृष्ठ 79

समकालीन कविता पर मंगलेश डबराल की अपनी अद्वितीय छाप है। वे एक अंत्यंत भावुक और संवेदनशील कवि के रूप में जाने जाते हैं और भावनाओं का शब्दीकरण भाषा के जरिए होता है। डॉ० स्मिता मिश्र का कहना है कि "भाषा अपने आप में सर्जक की पहचान है। भाषा के माध्यम से ही रचनाकार की गहराई समाज संस्कृति - परम्परा से उसका सरोकार मालूम पड़ता है।[215]

मंगलेश डबराल अपने साहित्य के द्वारा समाज की द्वन्द्वात्मकता व भौतिकता को सामने लाने वाले कवि हैं। उनकी भाषा में मौलिकता और निजीपन है। उन्होंने अपनी काव्य-कृतियों के माध्यम से कला-पक्ष के प्रत्येक आयाम को उजागर किया है। उनकी कविताएं वर्तमान के यथार्थ से जुड़ी कविताएं हैं। भाषा हमें भले ही परम्परा से प्राप्त होती है परंतु मंगलेश डबराल जैसे जागरुक रचनाकार कविताओं के माध्यम से नये संदर्भ और नये तेवर प्रदान करते हैं। इस तरह भाषा निरन्तर गतिशील रहती है। "भाषा के लिए यह आवश्यक है कि वह निरन्तर नये यथार्थ सन्दर्भों के अनुसार खुद को ढालती चले।"[216]

मंगलेश डबराल ने अपने समय की भाषा का प्रयोग अपने साहित्य में किया है। उनके प्रत्येक संग्रह में एक प्रकार का नयापन दिखाई देता हैं। उनकी काव्य भाषा व्यापक और कल्पनात्मक प्रौढ़ता के साथ उजागर करने की सामर्थ्य रखती है। भाषा से ही कविता का स्वरूप निर्धारित होता है। दोनों ही अपने अस्तित्व के लिए एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं।

मंगलेश डबराल की भाषा-शैली में पांडित्य प्रदर्शन नहीं है। मंगलेश की भाषा-शैली पर अजेय तिवारी का कहना है कि- "इनकी भाषा नजीर और नजरुल से भी ज्यादा सामान्य है" इस बात पर उत्तर देते हुए मंगलेश कहते हैं कि "मेरी इच्छा यह रही है कि मैं साधारण शब्दों में ऐसे अनुभवों को व्यक्त कर सकूँ, जो साधारण नहीं है यानी किसी असाधारण अनुभव को व्यक्त करने के लिए मुझे असाधारण भाषा या किन्हीं व्याकरण ग्रंथों या किसी काव्यशास्त्र की खोज न करनी पड़े।"[217]

---

[215] **मिश्र स्मिता, गीतफरोश : संवेदना और शिल्प, वाणी प्रकाशन, संस्करण 1995, पृष्ठ 60**

[216] **रामप्रकाश (डॉ.), मानक हिन्दी संरचना एवं प्रयोग, सन्मार्ग प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2000, पृष्ठ 23**

[217] **मंगलेश डबराल से ललित कार्तिकेय की बातचीत, साक्षात्कार**

भाषा के संदर्भ में मैं नरेन्द्र मोहन के विचारों को भी यहाँ प्रस्तुत करना चाहूँगी। वे कहते हैं कि "मैं भाषा को सामाजिक सरोकारों के साथ जोड़ने का कायल हूँ और भाषा की साँचेनुमा प्रकृति को तोड़कर, उसके जरिये सक्रिय कार्यवाही और परिवर्तन के भावों, विचारों को प्रतिफलित करने का इच्छुक हूँ।"[218]

मंगलेश डबराल कविता को पाठ्य के साथ-साथ एक दृश्य माध्यम के रूप में इस्तेमाल करना चाहते हैं, जो चलचित्र के समान दृश्यानुभूति पैदा कर सके। इसलिए वे चित्रात्मक, बिम्बात्मक भाषा के समर्थक हैं, यह उनकी कविताओं से सिद्ध होता है। उनकी कविताएँ सरल शब्द प्रयोग के कारण पाठक को अपनी ओर आकृष्ट करती है। वे पुराने प्रचलित शब्दों में ही नये अर्थों को ढूंढने का प्रयास करते हैं। उनके शब्द, संकेत मात्र बन कर सामने आते हैं। जैसे-

"तुम्हारे लिए आता हूँ मैं इस रास्ते
मेरे रास्ते में है तुम्हारे खेत
मेरे खेत में उगी है तुम्हारी हरियाली
मेरी हरियाली पर उगे हैं तुम्हारे फूल
मेरे फूलों पर मँडराती है तुम्हारी आँखे
मेरी आँखों में ठहरी हुई तुम ।"[219]

उनकी कई कविताओं में सपाटबयानी देखी जा सकती है। सपाटबयानी को विशेष रूप से 'आम आदमी' के साथ जोड़ा जाता है। निबंधकार मलयज अपने निबंध 'काव्य भाषा का इकहरापन' में लिखते हैं - "भाषा आज के संघर्ष में तप रहे अनुभव से जुड़ने का साधन नहीं, हथियार है। भाषा की सपाटबयानी उस हथियार की धार है जो हाथी दाँत की मीनारों में बन्द अभिव्यक्ति के जाल - जंजाल काटेगी और उसे 'आम आदमी' की नियति के साथ एकाकार करेगी।"[220] उनके

---

[218] **सिंह गुरचरण,पंडित सुमन, नरेन्द्र मोहन रचनावली - 1, खण्ड - 4, पृष्ठ 106**
[219] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, पुनर्रचनाएँ, पृष्ठ 88**

[220] **मलयज, प्र. सं. निर्मला जैन, सं. रामेश्वर राय, निबंधों की दुनिया : मलयज, काव्यभाषा का इकहरापन (निबंध), वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली, संस्करण 2012, पृष्ठ 114**

अनुसार आज के युग में कवि अपनी बात को इतने सीधे और सहज रूप में कहें कि वह सपाटता में ही असरदार सिद्ध हो।

अतः स्पष्ट है कि 'भाषा' काव्य का शरीर है जो कवि के भावों और विचारों को रूपाकार प्रदान करती है। कवि मंगलेश की भाषा में जो अद्भुत कसावट है और शिल्प पर जो आश्चर्यजनक अधिकार, वह उनकी काव्यभाषा को विशेष बनाता है। वे एक ऐसी भाषा के प्रयोक्ता है, जो पाठक को गहरी संवेदना और विचारों से जोड़ती है।

शब्द संपदा

साहित्य के शब्दों में सभ्यता, संस्कृति, भावना, विचार और मनुष्यता का वास होता है। शब्दों की ही धुरी पर टिककर कोई साहित्यकार अपनी भावनाओं या अनुभूति की अभिव्यक्ति कर सकता है। कविता में कोई शब्द अपने सन्दर्भ के साथ सार्थक बनता है। कविता में सामान्यतः अभिधात्मक अर्थ की अपेक्षा व्यंजनात्मक अर्थ का ही प्रयोग होता है। मंगलेश डबराल ने बहुत ही कम शब्दों में गम्भीर बात कही है। इन्होंने अपनी रचनाओं में अंग्रेजी, उर्दू, अरबी, फारसी, तत्सम्, तद्भव, मुहावरें एवं लोकोक्तियों का प्रयोग अपनी योग्यता और ज्ञान के आधार पर किया है।

- **अरबी, फ़ारसी एवं उर्दू शब्द**

  अख़बार[221], तहख़ाना[222], मुसाफ़िर[223], अफ़सोस[224], ख़बर[225], आख़िरकार[226], तस्वीर[227], शतरंज[228], ग़ुलाम[229], शराब[230]

- विदेशज शब्द

  टॉफी-लेमनजूस[231], पोस्टर[232], लॉटरी[233], ट्रेजड़ी[234], ऑक्सीजन[235], बैंक[236], नंबर[237], टॉर्च[238], पार्क[239]

---

221 **डबराल, आवाज़ भी एक जगह हैं, पृष्ठ 11**
222 **वही, पृष्ठ 39**
223 **वही, पृष्ठ 60**
224 **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, पृष्ठ 27**
225 **वही, पृष्ठ 62**
226 **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, पृष्ठ 20**
227 **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, पृष्ठ 28**
228 **वही, पृष्ठ 75**
229 **डबराल मंगलेश, नए युग में शत्रु, पृष्ठ 26**
230 **डबराल मंगलेश, नए युग में शत्रु, पृष्ठ 46**
231 **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, पृष्ठ 30**
232 **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, पृष्ठ 33**
233 **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, पृष्ठ 80**
234 **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, पृष्ठ 14**
235 **डबराल मंगलेश, नए युग में शत्रु, पृष्ठ 12**
236 **डबराल मंगलेश, नए युग में शत्रु, पृष्ठ 22**
237 **डबराल मंगलेश, नए युग में शत्रु, पृष्ठ 34**
238 **डबराल मंगलेश, नए युग में शत्रु, पृष्ठ 32**
239 **डबराल मंगलेश, नए युग में शत्रु, पृष्ठ 102**

- तत्सम एवं तद्भव शब्द

  पीठ[240], पार्श्व[241], सूरज[242], आग[243], फूल[244], पत्थर[245], नृत्य[246], यथार्थ[247], पंचम[248], कुशल[249]

- युग्म शब्द

  हीरे-मोती[250], तितर-बितर[251], नहा-धोकर[252], अस्त-व्यस्त[253], तीर-कमान[254], तुरत-फुरत[255]

बिंब

बिम्ब-विधान काव्य का एक महत्त्वपूर्ण प्रतिमान है। जैसे साधारण मानव बाह्य जगत के सौंदर्य का उपयोग किसी न किसी रूप में करता है, वैसे ही कवि या रचनाकार इस बाह्य-सौन्दर्य को अपने काव्य रूप में और अधिक सौन्दर्य प्रदान करता है। कवि जटिल भावों को 'शब्दों' के माध्यम से बांधकर व्यक्त करताहै। 'शब्दों की यही शक्ति बिम्ब का रूप धारण कर लेती है। किसी वस्तु का कल्पना - चित्र अथवा मानस - चित्र ही बिम्ब है। संसार की वस्तु को कवि यथावत् रूप से

240 **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, पृष्ठ 11**
241 **वही, पृष्ठ 26**
242 **वही, पृष्ठ 90**
243 **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, पृष्ठ 24**
244 **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, पृष्ठ 16**
245 **वही, पृष्ठ 28**
246 **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, पृष्ठ 43**
247 **डबराल मंगलेश, नए युग में शत्रु, पृष्ठ 20**
248 **डबराल मंगलेश, नए युग में शत्रु, पृष्ठ 33**
249 **डबराल मंगलेश, नए युग में शत्रु, पृष्ठ 44**
250 **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, पृष्ठ 43**
251 **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, पृष्ठ 19**
252 **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, पृ० 49**
253 **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, पृष्ठ 50**
254 **वही, पृष्ठ 60**
255 **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, पृष्ठ 78**

देखकर अपनी ओर से रूपक, उपमा आदि के सहारे जब उसको एक नया रूप देता है तो वह नया रूप ही बिम्ब कहलाता है। बिम्ब का अर्थ शब्द - चित्र से भी लिया जाता है। कविता में भावनाओं और विचारों के अलावा जो प्राणवत व ठोस वस्तु होती है, वही बिम्ब होता है।

कवि मंगलेश डबराल के उनके अनुसार, कविता लिखने की प्रक्रिया बिंब से ही आरंभ होती है - "मैं मानता हूँ कि सबसे पहले कविता किसी इमेज, किसी बिंब, किसी दृश्य, किसी हूक यहाँ तक कि किसी रोने की तरह आती है और फिर मैं कोई एक पंक्ति लिख लेता हूँ।"[256]

"कविता रोजमर्रा की भाषा नहीं, अपितु दृश्य अथवा मूर्त भाषा है। काव्य में बिम्ब - विधान मात्र अलंकरण के लिए नहीं होता वरन् वह कविता का प्राणतत्त्व है।"[257]

मंगलेश डबराल ने अपनी रचनाओं में बिम्बों का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग किया है। उनकी कविता में आए बिम्ब कविता की वस्तु को और अधिक समृद्ध और प्रभावक बनाते हैं। मंगलेश डबराल के काव्य-संग्रहों का अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि कुछ बिन्दु, बिम्ब, घटनाएँ उनकी स्मृति में छायी रहती हैं।

विजय कुमार ने मंगलेश डबराल के काव्य बिंब के बारे में बताया है कि "मंगलेश जितने निष्प्रयास ढंग से बिम्ब रचते हैं वह उनके अपने परिवेश से गहन सम्पृक्ति का भी प्रमाण है।"[258]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मंगलेश डबराल के काव्य में बिंबों का प्रयोग व्यापक स्तर पर हुआ है। उन्होंने बिंबों का प्रयोग अपनी भाषा में चित्रमयता की क्षमता बढ़ाने और चिन्तन को अधिक प्रेषणीय बनाने के लिए किया है। उनके बिंबों में विविधता और नवीनता है। जिस प्रकार एक चित्रकार कुछ ही रेखाओं में चित्र - आकृति को स्पष्ट कर देता है, उसी प्रकार मंगलेश डबराल भी थोड़े शब्दों में वांछित बिम्ब गढ़ लेते हैं। स्वयं मंगलेश डबराल कहते हैं- "मेरी कविताओं में

[256] **डबराल मंगलेश, उपकथन, विष्णु नागर से बातचीत, पृष्ठ 142 (मूलतः आकाशवाणी, दिल्ली सी प्रसारित)**
[257] **पाटिल (डॉ.) मधुसूदन, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में बिम्ब-विधान, पृष्ठ 14**
[258] **कुमार विजय, साठोत्तरी हिन्दी कविता,पृष्ठ 260**

बिम्ब ज़रूर होंगे। पर वह बिंबात्मक कविता नहीं, दृश्यात्मक ज़्यादा है। कविता में एक चीज़ एक दृश्य के रूप में उपस्थिति होती है। अगर यह कहा जाये कि कविता दृश्यों का वर्णन है तो शायद यह मेरे ज़्यादा अनुकूल रहेगा।"[259]

बिम्ब का वास्तविक रूप शब्द चित्र है, जिसके निर्माण में कल्पना सहायक है और अनुभूति महत्वपूर्ण आधार है। मंगलेश डबराल की कविताओं में सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, पारिवारिक, वैचारिक, प्राकृतिक आदि बिंबों के आधार पर मंगलेश डबराल के काव्य में निहित बिम्ब विधान का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। जो निम्नलिखत है-

- सांस्कृतिक बिम्ब:

जैसा कि हम तृतीय अध्याय में देख चुके हैं, मंगलेश डबराल के काव्य के केन्द्र में संस्कृति और संस्कृति के प्रति गहरी आस्था है। उनके काव्य में उसे बरकरार रखने की चिंता दिखाई देती है। संस्कृति व्यक्तित्व की पहचान है। समाज, देश और हमारे अस्तित्व की परिचायक है। वर्तमान समय की तेज रफ़्तार भरी ज़िंदगी में गुम हो रही संस्कृति को बचाने का एक प्रयास उनकी कविताओं में है-

"बहुत-से पेड़ जो नष्ट हो गये
उनकी जड़ें छिपी है इनमें
निर्जन पृथ्वी के भीतर से आये ये पत्थर
पूर्वजों के जीवाश्म जिनके भीतर ठंड है
ज़रा सी धूप पाकर जो चमकने लगते हैं।"[260]

[259] डबराल मंगलेश, उपकथन : पंद्रह संवाद, पृष्ठ 23
[260] डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, पत्थरों की कहानी, पृष्ठ 34

'ज़रा सी धूप पाकर जो चमकने लगते है' के माध्यम से कवि हमारे संस्कृति में निहित शक्ति एवं सामर्थ्य की ओर संकेत करते हैं। बदलते वक्त में परिवर्तित मूल्य में कुछ पल के लिए हो सकता है कि संस्कृति में निहित ऊर्जा एवं चमक धूंधली प्रतीत हो परंतु अन्दर से वह असीम शक्ति से युक्त होती है|

आज की शहरी संस्कृति को कितनी सजीवता एवं सूक्ष्मता से मंगलेश निम्न पक्तियों में दर्शाते हैं-

"हम उठते हैं सुबह चार बजे
नहाते हैं
कपड़े पहनते हैं तुरत-फुरत
किसी को धक्का देकर
चढ़ते हैं एक बस में
रास्ते में गुलमोहर के पेड़ देखते
मुस्कुराते
अपनी बगल में बैठे आदमी से
पूछते हैं
अंदाज़ से कितना पैसा कमाया होगा आपने"[261]

वर्तमान संस्कृति जो कि अमेरिकन संस्कृति का अनुसरण करने में ही अपनी समृद्धि समझती है, उसके खोखलेपन को मंगलेश डबराल ने 'भूमंडलीकरण' कविता में बड़ी ही यथार्थता से व्यक्त किया है-

"बड़ी तेज़ी से दुनिया बनती जा रही है एक बड़ा गांव
लोभ क्रोध ईर्ष्या द्वेष के लिए अब कहीं नहीं जाना पड़ता

[261] **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, एक शहर की नौ कविताएं, पृष्ठ 78-79**

हर चीज़ समान रूप से मिलने लगी है हर जगह

मनुष्यों के संबंध बहुत पतले तारों से बांध दिये गये हैं।"[262]

'अमेरिका में कविता' मंगलेश डबराल की इस श्रृंखला की महत्त्वपूर्ण कविता है जिसमें कवि ने अमेरिका में स्त्री-पुरुष को मात्र नर और मादा के रूप में संबंध बनाए हुए चित्रित किया है। अपसी प्रेम कहीं खो गया है-

"वे नौजवान नर और मादा शरीर

जो चेहरे पर असमय आती झुर्रियों से

परेशान है

एक विशाल शतरंज पर तैनात

एक दूसरे को मात दने का खेल खेलते हैं।"[263]

उपर्युक्त पंक्तियों में यथार्थ की सघनता लक्षित होती है। अमेरिकी संस्कृति में स्त्री-पुरूष संबंध के यथार्थ को पूरी तटस्थता के साथ मंगलेश डबराल ने चित्रित किया है।

- प्रेमपरक बिंब:

मंगलेश डबराल प्रेम को मानव जीवन का मूलाधार मानते है। प्रेम चित्रण में कवि ने ऐन्द्रिय बिम्ब के अन्तर्गत दृश्य बिम्ब, घ्राण बिंब और स्पृश्य बिम्ब का बहुत ही सुन्दर प्रयोग निम्न पंक्तियों में किया है-

"हवा में धीरे-धीरे तुम्हारे शरीर की गंध

धीरे-धीरे हाथ-पैर धीरे-धीरे आकार

और महसूस करने के लिए छोटे-छोटे रोयें

कितने सारे रंगों से मिलकर बने

---

[262] **डबराल मंगलेश, नए युग में शत्रु, भूमंडलीकरण, पृष्ठ 41**

[263] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, अमेरिका में कविता, पृष्ठ 35**

तुम्हारे रंग से शुरू होते हें दिन

तुम गुज़रती जाती हो आहटों से दूर

हाथ बढ़ाकर मैं तुम्हारे हाथ छूता हूँ

चौराहें पर रोशनियों के बीच।"[264]

कवि प्रेम को मन-प्राण से जीना चाहते है। प्रेम को मिठास एवं तृप्ति से युक्त मानते है। आत्मा में उसे बसाना चाहते है तभी तो कहते हैं-

"तुम्हारा प्यार लड्डुओं का थाल है

जिसे मैं खा जाना चाहता हूँ।"[265]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि द्वार प्रयुक्त आस्वाद्य बिंब को देखा जा सकता है, जिसमें कवि प्रेम को खाने की बात करते हैं अर्थात् प्रेम उनके लिए ज़िन्दा रहने की शर्त है। कवि प्रेम में पूर्ण समर्पण की बात करते है। वे मानते हैं कि प्रेम में प्रेमी-मन एकाकार हो जाता है। उनकी नीति सत्ता समाप्त हो एक-दूसरे में विलीन हो जाती है। यथा-

"तुम्हारे लिए आता हूँ मैं इस रास्ते

मेरे रास्ते में तुम्हारे खेत

मेरे खेत में उगी है तुम्हारी हरियाली

मेरी हरियाली पर उगे हैं तुम्हारे फूल

मेरी फूलों पर मंडराती है तुम्हारी आँखे

मेरी आँखों में ठहरी हुई तुम।"[266]

---

[264] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, लंबा रास्ता, पृष्ठ 48-49**

[265] **वही, तुम्हारा प्यार, पृष्ठ 39**

[266] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, पुनर्रचनाएं, पृष्ठ 88**

मंगलेश डबराल मानते है कि प्रेम में डूबे हुये 'प्रेमीजन' कभी समय के बहाव में ओझल नहीं होते बल्कि वक्त के रेत पर उनके पदचाप देखे, सुने जा सकते हैं। प्रेम आत्मा की तरह अमर है और इस अमर प्रेम के प्रेमीजन की कथा भी अमर होती है-

"यह बहुत पुरानी बात है
एक सुंदर स्वप्नवत् दृश्य में
एक शांत पेड़ पर आकर बोलती थी
एक चिड़िया कई दिनों तक
कुछ बूढ़े - बूढ़ियां उसे कभी-कभी याद करते हैं
और चुप रहते हैं
एक दूसरे की आंखों में देखते।"[267]

कवि ने दृश्य एवं श्रव्य बिम्ब के माध्यम से कितना सुन्दर दृश्य उपस्थित किया है। जिसमें कथा सुनाती चिड़िया है, यादों में डूबे वृद्धजन है और इन सबकी पृष्ठभूमि में अमर प्रेमीयों की अमर प्रेम-कथा पूरे वातावरण में तैरती हुई अनुभूत होती है।

- प्रकृति परक बिंब:

मंगलेश डबराल का प्रकृति के साथ गहरा सम्बन्ध रहा है। काफ़लपानी के पर्वतीय प्रदेश में जन्म लेने और अपना प्रारम्भिक जीवन प्रकृति की गोद में बिताने के कारण प्रकृति के साथ कवि मन का सम्बन्ध जुड़ना अत्यन्त सहज और स्वभाविक है। कवि ने प्रकृति के कई दृश्य अपनी रचनाओं में प्रकट किए हैं। कहीं तो प्रकृति उनकी सहचरी के रूप में चित्रित है तो कहीं अपने एकदम यथार्थवादी रूप में। पहाड़, जंगल, पेड़, पत्थर, नदी, झरने, चिड़िया, बादल, ठूंठ, पत्ते, हवा इत्यादि बार-बार दृश्य की तरह उनकी कविताओं में आते है।

[267] **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, प्रेमीजन, पृष्ठ 23**

'यहाँ थी वह नदी' कविता में कवि स्मृति में अपने घर गाँव, नदी और उसकी पुकारती आवाज़ को कितनी सजीवता से चित्रित करते हैं-

"बचपन की उस नदी में
हम अपने चेहरे देखते थे हिलते हुए
उसके किनारे थे हमारे घर
हमेशा उफनती
अपने तटों और पत्थरों को प्यार करती
उस नदी से शुरू होते थे दिन
उसकी आवाज़
तमाम खिड़कियों पर सुनायी देती थी
लहरें दरवाज़ों को थपथपाती थीं
बुलाती हुई लगातार।"[268]

मंगलेश डबराल की कविताएँ शब्दों के माध्यम से पूरे दृश्य को जीवंतता के साथ आँखों के सामने उपस्थित कर देती है। बर्फ़ के गिरने के माध्यम से उन्होंने ठप होती जिन्दगी और उस पर भी चुपचाप लगातार बर्फ़ के गिरते रहने को जिस यथार्थता एवं कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है वह अद्भुत है-

"बर्फ़ के नीचे दबी है घास
चिड़ियां और उनके घोंसले
और खंडहर और टूटे हुए चूल्हे
लोग बिना खाये जब सो जाते हैं
वह चुपचाप गिरती रहती है

[268] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, यहां थी वह नदी, पृष्ठ 15**

बर्फ में जो भी पैर आगे बढ़ता है

उस पर गिरती है बर्फ"[269]

प्रकृति कवि मंगलेश के लिए जीवन का एक हिस्सा है, अपरिहार्य अंग जिसे सिर्फ़ देखा या सुना नहीं जा सकता बल्कि छूआ जा सकता है। मंगलेश की अधिकांश बातों या उदाहरणों में प्रकृति सहज रूप में शामिल होकर स्वयं को अभिव्यक्त करती है। कवि का प्रकृति के प्रति अनुराग देखा जा सकता है। महानगर में आने के बाद स्मृति से उपजी पहाड़ी क्षेत्र का दृश्य-

"पत्थरों के इस रास्ते में कई बार आया हूँ

मैंने देखा है पानी का वेग रोकते

आदमियों से भी ऊँचे पत्थरों को

और उन्हें भी जो इनके सामने बिल्कुल बच्चे हैं

जिनके भीतर से नदी आसानी से बह जाती है।"[270]

उपर्युक्त पंक्तियों में दृश्य एवं प्राकृतिक बिंब का समन्वय है। कवि ने प्रकृति को जीवनगत यथार्थ को चित्रित करने का माध्यम बनाया है। कल्पना की अपेक्षा वास्तविकता उनकी कविताओं में अधिक है। उदाहरण स्वरूप–

"शिखरों से टकराती हुई तुम्हारी आवाज़

सीलन-भरी घाटी में गिरती है

और बीतते दृश्यों की धुंध से

छनकर आते रहते हैं तुम्हारे देह – वर्ष

पत्थरों पर झुकी हुई घास

इच्छाओं की तरह अजस्र झरने

---

[269] **वही, गिरना, पृष्ठ 13**

[270] **डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, पत्थरों की कहानी, पृष्ठ 34-35**

एक निर्गंध मृत्यु और वह सब

जिससे तुम्हारा शरीर रचा गया है।"[271]

मंगलेश डबराल की कविता में प्रकृति अपने विविध रूप, रंग, संगीत एवं सौन्दर्य के साथ उपस्थित है। कवि ने प्रकृति परक बिम्बों के माध्यम से प्रकृति के कण-कण में छिपी सुन्दरता एवं प्रेरक तत्वों को बड़ी सूक्ष्मता एवं सजीवता के साथ चित्रित किया है।

- स्मृति बिम्ब:

मंगलेश डबराल की कविताओं में बिम्ब योजना बेजोड़ है। उनकी रचनायें उनके मन-मस्तिष्क में उभरने वाले स्मृति चित्रों को भी बड़ी गहनता से उभारती है। उनकी स्मृतियों में बचपन है, गाँव है, कुछ तस्वीरें, कुछ लोग है, नदी, झरने, पहाड़ है, माता-पिता, दादा-दादी, टूटी-फूटी परंतु आत्मीयता से भरी छोटी-छोटी चीजें हैं, खिलौने है और घर की ओर जाने वाला रास्ता भी है। यहां तक कि कवि 'ब्रेस्ट और निराला' भी है।

"सपने में देखा कोई घर था

घर क्या टूटा-फूटा सा कमरा एक

कुर्सियाँ रखी हुई थीं बहुत पुरानी

बैठे थे उन पर बेर्टोल्ट ब्रेष्ट और निराला

वैसे ही जैसे अपनी-अपनी तस्वीरों में दिखते थे।"[272]

कवि मंगलेश डबराल स्मृति को जीवन में एक प्रेरणा स्रोत, एक शक्ति एवं ऊर्जा के रूप में देखते है। स्मृति मात्र व्यतीत नहीं है वह भविष्य की ओर जाने का रास्ता भी है। 'स्मृति' कविता में कवि की बिम्ब योजना लाजवाब है-

---

[271] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, अंतराल, पृष्ठ 55**

[272] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, ब्रेस्ट और निराला, पृष्ठ 32**

"रात भर हम देखते हैं

पत्थरों के नीचे

पानी के छलछलाने का स्वप्न

सुबह बर्फ झाड़ते पेड

छिटककर अलग होते हैं।

और विनम्र अपनी जड़ों तक झुक जाते हैं।"[273]

'गाता हुआ लड़का' रघुवीर सहाय की स्मृति में लिखी ऐसी कविता है जिसमें बचपन का संघर्ष है, ग़रीबी है, भूख है, जरूरतें है। एक कलाकार के जीवनयात्रा के प्रारम्भ का संघर्ष है, निर्मित होने का सुख है तो एक ग़रीब लड़के की विवशता है-

"आये याद मुझे पंडित भीमसेन जोशी

आज के बड़े प्रतापी गायक जो भागे थे घर से

संगीत सीखने जब वे ग्यारह के थे

पर क्या यह लड़का भी निकला होगा इसी तरह

वह गया हुआ ओझल

रस्ते भर रही मेरे साथ वह मीठी धुन

जिसमें उम्मीदें थीं और खुशी थी

इस तरह महज़ एक रूपैये में मिली मुझे कविता

घर आकर मैंने वह धुन गायी मन में और रो पड़ा

कितना रहा अकारथ मेरा होना

कैसा विचित्र रात में यह रोना।"[274]

[273] डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, स्मृति, पृष्ठ 45

[274] डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, गाता हुआ लड़का, पृष्ठ 65

स्मृति बिंब का एक उदाहरण छुपम-छुपाई' में देखा जा सकता है जहाँ रहस्य, रोमांच, हर्ष, जीवन का यथार्थ, स्वयं को वर्तमान समय के कई पर्दों में छुपाया हुआ मनुष्य दिखता है। बच्चों के इस साधारण से खेल में मंगलेश के गूढ़ चिंतन ने जीवन के ना जाने कितने गूढ सत्य एवं तथ्य का पर्दाफाश किया है-

"और आवाज़ भी एक जगह है जहां छिपा जा सकता है

अपने कुतूहल कल्पना और सहज बुद्धि के सहारे

आगे बढ़ता बच्चा खोज ही लेता है छिपे हुए को

कुछ देर के ऊहापोह के बाद

वही होता है एक सघन उल्लास का क्षण

जब रहस्य और यथार्थ

चमकदार आँखों से एक-दूसरे से टकराते हैं।"[275]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि का जीवन विषयक दृष्टिकोण दिखायी देता है। जहाँ यथार्थ रहस्य को भेदता हुआ परिलक्षित होता है। कवि की स्मृति में बचपन का घर है। घर जिसकी याद महानगरीय जीवन के भीड़, कोलाहल, छल से भरे समय में बार बार आती है।

"और मुझे याद आ रहा है बचपन का घर

जिसके आँगन में औंधा पड़ा मैं

पीठ पर धूप सेंकता था।"[276]

स्मृति बिंब मंगलेश डबराल की रचनाओं में भरे हैं, जो कहीं हमें गुदगुदाते है, कहीं, रोमांचित करते, कहीं मुस्कुराने की वजह देते तो कहीं एक ज़रूरी चिंता के लिये तैयार करते हैं। उनका छठा कविता संग्रह 'स्मृति एक दूसरा समय है' इसी प्रकार की कविताओं से भरा है।

[275] **वही, छुपम छुपाई, पृष्ठ 11**

[276] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, घर शांत है, पृष्ठ 10**

प्रतीक- विधान

प्रतीक ऐसा शब्द चिह्न है जो किसी वस्तु का बोध कराता है। वस्तुतः प्रतीक किसी सूक्ष्म भाव, विचार या अगोचर तत्त्व को साकार करने के लिए प्रयुक्त होता है। उदाहरण के लिए किसी भी देश का ध्वज उस देश की राष्ट्रीय भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने के कारण राष्ट्र के सम्मान एवं गौरव का प्रतीक होता है। शब्द रूप में देखें तो प्रतीक किसी अन्य अर्थ की व्यंजना करता है।

'प्रतीयते अनेन इति प्रतीक' अर्थात् जिससे प्रतीत हो या किसी वस्तु की अभिव्यक्ति हो, वह प्रतीक है।[277] सामान्यतः प्रतीक शब्द का प्रयोग हिन्दी और अंग्रेजी तथा संस्कृत भाषा में भी चिह्न, प्रतिनिधि, प्रतिरूप, प्रतिमा आदि अर्थों में चलता है।[278]

जब एक कवि अपनी भावनाओं की विशद् अभिव्यक्ति करने में सीधे-सादे ढंग से सफ़ल नहीं हो पाता, तब प्रतीकों की सहायता से उसकी अभिव्यक्ति करने का प्रयत्न करता है। प्रतीकों का प्रयोग करने से अभिव्यक्ति में मार्मिकता आती है।

मंगलेश डबराल ने जीवन के अनेक क्षेत्रों से विभिन्न वर्गों के प्रतीकों का चयन किया है । मंगलेश डबराल की यह खासियत है कि उन्होंने अपने साहित्य को मुहावरों एवं शब्दों तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि प्रतीकों के नये-नये अर्थ देने का प्रयत्न किया है। नये प्रतीकों की सार्थक तलाश भी उनकी कविताओं में दिखाई देती है । कवि मंगलेश प्रतीक को वस्तु में परिवर्तित कर देने की दृष्टि रखते हैं। वे प्रतीक नहीं गढ़ते बल्कि संकेत करते हैं -

> **"माँ के चेहरे पर मुझे दिखाई देती है**
> **एक जंगल की तस्वीर, कड़ी घास और**
> **पानी की तस्वीर खोयी हुई एक चीज की तस्वीर ।"**[279]

---

[277] **गुप्त (डॉ.) उमाकांत, नई कविता के प्रबंध काव्य, शिल्प और जीवन दर्शन, वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली, संस्करण 2000, पृष्ठ 227**

[278] **हिन्दी शब्दसागर, भाग - 3, पृष्ठ 2209**

[279] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, माँ की तस्वीर, पृष्ठ 27**

इन पंक्तियों में एक पहाड़ी औरत जो लकड़ी, घास और पानी जुटाती है, वह कवि की माँ है। 'माँ' तो प्रतीक है, जिसमें पहाड़ और जंगल की वस्तुएँ साकार हो उठती हैं। जीवन में आई हुई समस्याओं का कवि ने एक नये यथार्थ के साथ साक्षात्कार करवाया है। जीवन की समस्याएँ जितनी तीव्र हो गयी हैं, वे भय में परिवर्तित हो गयी है। जीवन का सच इतना निर्मम हो गया है कि अपनी भूख मिटाने के लिए अपना ही शरीर है । कवि प्रतीकात्मक रूप से भूख से छटपटाने और मरने का चित्रण कटते है। कवि ने स्वयं की भूख को शान्त करने के लिए स्वयं को समर्पित करने का चित्रण प्रतीक रूप से हमारे सामने प्रस्तुत किया है-

"तमाम संबंधों को विदा कर देने के बाद
मैं यहाँ उगा हूँ
जहाँ सारी ऋतुऐं समाप्त हो गयी हैं
धूप और समुद्र समाप्त हो गए हैं
थोड़ी देर के लिए मैं उगा हूँ यहाँ
जहाँ उजाला, जाले की तरह चिपटता है
और समस्याएँ मेरी भूख
के कारण
डाल देती हैं मेरा ही शरीर ।"[280]

कवि मंगलेश ने समाज में स्त्री-दशा को रेखांकित करते हुए निम्न पंक्तियों को प्रतीक रूप में लेकर पुरुष के द्वारा स्त्री के प्रति छल-कपट को प्रस्तुत किया है, जैसे-

"जबकि पुरुष सिर्फ अभिनय कर रहा है
सबसे अच्छे कपड़े पहने हाथ में एक फूल लिये हुए
वह उसे फुसलाकर एक कगार तक ले जाता है

[280] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, चुपचाप, पृष्ठ 28**

एकाएक उसके पैसे छीनता है

और उसे नदी में धकेलकर भाग जाता है।"[281]

'आवाज़ भी एक जगह है' काव्य-संग्रह में 'सुबह की सड़क पर कविता में सड़क को बच्चों का प्रतीक माना गया है-

"एक जैसे कपड़ों में सजे सभी बच्चे

गहरे या कुछ कम गहरे आसमानी कुछ सलेटी कुछ कत्थई

उनके चहेरे सुबह या शाम या दोपहर के रंग के

कहीं जरा-सा लाल हरा या नीला बंधा हुआ

छोटे-छोटे बादलों जैसे बच्चे इस तरह उछलते हुए आये

जैसे उन्हीं के कारण हो रही हो यह आश्चर्यजनक सुबह।"[282]

कवि ने उछलते हुए बच्चों को छोटे बादलों का प्रतीक बताया है। इस प्रकार बच्चों को सुबह की सड़क व छोटे बादलों का प्रतीक माना गया है। कोई भी रचनाकार अपने भावों एवं विचारों को संप्रेषित करने के लिए प्रतीकों का सहारा लेता है। मंगलेश डबराल की काव्य-भाषा में हम जगह-जगह प्रतीकों का प्रयोग देख सकते हैं। उन्होंने आधुनिक जीवन के प्रतीकों का भी प्रयोग किया है। वे लिखते हैं-

"इस शहर में दिखाई देते हैं विचित्र लोग

मेरे शत्रुओं से मिलते हैं उनके चेहरे

आरामदेय कारों में बैठकर वे जाते हैं

इंदिरा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे की ओर।"[283]

---

[281] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, स्त्रियाँ, पृष्ठ 18**

[282] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, सुबह की सड़क पर, पृष्ठ 56**

[283] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, दिल्ली : एक, पृष्ठ 45**

कवि ने यहाँ जीवन-शैली के आधुनिक प्रतीकों का प्रयोग किया है। आज की जीवन-शैली आरामदायक व अटपटी हो गयी है । कवि ने शहरी जीवन के प्रतीकों को यहां बताया है। कारों को आरामदेय का प्रतीक माना गया है। गाँवों को छोड़कर शहरों की तरफ पलायन करने से बढ़ते हुए नगरीकरण को दर्शाने के लिए कवि ने प्रतीकों को माध्यम बनाया है। जैसे-

"कुछ ही देर बाद
इस छोटे से शहर में आया
शोर कालिख पसीने और लालच का बड़ा शहर।"[284]

इन पंक्तियों में शोर, कालिख, पसीना और लालच शब्द बढ़ती हुई आबादी अर्थात् लोगों का प्रतीक है। कवि मंगलेश जन साधारण की पारिवारिक स्थिति का हृदयस्पर्शी चित्रण अपनी कविता में करते हैं। मज़दूर लोग अपनी रोजी-रोटी के लिए दिन-रात मेहनत करते हैं और झोपंडियों में रहते हैं। इस झोपड़ी की लकड़ी की दीवारों पर दीमक लगी है जो लकड़ी को खोखला करने के काम में तत्पर है। उसकी मरम्मत करने के लिए मजदूरों के पास पैसे नहीं है। अपनी कविता 'घर' में जो काठ के संदूकों का वर्णन कवि करते हैं वो काठ के संदूक ग़रीबी के प्रतीक है। वे संदूक यह दिखाते हैं कि इस घर में ग़रीबी के सिवाय और कुछ भी नहीं है, अगर कुछ है तो सिर्फ कुछ सपने और फटे-पुराने कपड़े। इसी गरीबी का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं-

"काली काठ की दीवालों पर सांप बने हैं
जिन पर पीठ टेकने के निशान हैं
इनमें दीमकें लगी हैं
जो जब चलती हैं पूरा घर कांपता है
इसमें काठ का एक संदूक है
जिसके भीतर चीथडों और स्वप्नों का

[284] **डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, दिल्ली में एक दिन, पृष्ठ 17**

एक मिला-जुला अंधकार है

इसके पिता ने दादा से प्राप्त किया था।[285]

मंगलेश डबराल की कविताओं में राजनीतिक प्रतीकों की भी बहुलता है। उन्होंने राजनेताओं, अत्याचार और आंतक पर व्यंग्य करने के लिए एवं पूँजीपतियों का विरोध करने के लिए 'खिलौने' कविता में प्रयुक्त किए गए भेड़िये, हिरन, बंदर, खरगोश आदि शब्द प्रतीक रूप से इस्तेमाल किए गए हैं जो पूँजीवादी व्यवस्था, आतंकवाद एवं अत्याचार को प्रकट करते हैं, जैसे -

"अब कोई क्या खिलौने बेचे

निगाह झुकाये गुजरता है फेरीवाला

मुझे शर्म आती है इन्हें ढोते हुए

फर्क नहीं रहा भेडिये और हिरन की आँखों में

बंदर दिखता है खूँखार

रबर का बना खरगोश

दन से दाग देता है पिस्तौल ।"[286]

जिस कविता संग्रह से उनके कविता लेखन की शुरुआत हुई, वह 'पहाड़ पर लालटेन संग्रह मूलतः लालटेन के नवीनतम प्रतीक के कारण ही ज्यादा चर्चा में आया। 'पहाड़ पर लालटेन' कविता में लालटेन संघर्ष चेतना का प्रतीक है। इस तरह से इन सभी उदाहरणों को देखते हुए हम कह सकते हैं कि मंगलेश डबराल प्रतीकों का बड़ा ही रोचक प्रयोग अपनी कविताओं में करते हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीक परंपरागत प्रतीक नहीं है। उन्होंने खुद से हिंदी साहित्य को नवीन प्रतीकों के प्रयोग द्वारा समृद्ध किया है।

[285] डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, घर, पृष्ठ 19

[286] डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, खिलौने, पृष्ठ 73

संगीतात्मकता

संगीत एक ऐसी विद्या है जो कविता को हृदयग्राही बनाती है। कविता में संगीत की गूंज कविता को प्राणवान बनाती है। मंगलेश डबराल बाल्यावस्था से ही संगीत प्रेमी थे। उनके पास संगीत की विरासत थी। आलोचक अरविंद त्रिपाठी उनके काव्य में संगीत पर टिप्पणी देते है कि "मंगलेश अपनी पीढ़ी के अकेले कवि है जिन्होंने कविता और संगीत के रिश्ते को एक बार फिर से जोड़ने की कोशिश की है। इस कोशिश में उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि यह लगती है कि उन्होंने कविता की लय को संगीत की धुनों, रागों और खोयी हुई आवाज़ों से जोड़ने का उपक्रम किया हैं। फलतः उनकी कविता संगीत की रागों का विशाल राग-कोष लगती है।"[287]

शास्त्रीय संगीत प्रेमी मंगलेश डबराल की कविताएँ संगीत की आन्तरिक गूंज से भरी है। अतः संगीत की ही तरह वह सीधे हृदय को स्पर्श करती है। वास्तव में संगीत हमारे चारों और फैला है, प्रकृति के कण-कण में संगीत समाहित है, हर जगह संगीत ही संगीत है। ज़रूरत है तो इसे सुनने और महसूस करने की। मंगलेश डबराल की कविताओं में यह अनुभूति है।

मंगलेश डबराल जिन्दगी से जुड़े कलाकार है, जिनके व्यक्तित्व में काफलपानी का पहाड़ी गाँव और वहां की संस्कृति का प्रभाव है तो दिल्ली जैसे महानगर में हिंसा, द्वेष, घृणा, आतंक, लोभ, स्वार्थ, रक्तपात जैसे भयानक शोर के प्रभाव से उत्पन्न, दुख, करूणा एवं निराशा को भी महसूस किया जा सकता है। परंतु दुख से शक्ति अर्जित करने वाले मंगलेश डबराल निराशा में भी आशावान है। वे एक तटस्थ द्रष्टा मात्र नहीं है बल्कि अपनी रचनात्मक ज़िम्मेदारी से परिचित एक सच्चे कलाकार है तभी तो एक ज़िम्मेदार एवं दृढ़ संकल्पी कवि के रूप में वे कहते हैं-

"जो कुछ भी था जहां तहां हर तरफ़
शोर की तरह लिखा हुआ

[287] **त्रिपाठी अरविंद, कवियों की पृथ्वी, आधार प्रकाशन - हरियाणा, संस्करण 2004, पृष्ठ 184**

उसे ही लिखता मैं

संगीत की तरह ।"[288]

'शोर' को 'संगीत' की तरह वही कवि लिख सकता है जो जीवन, समाज और मनुष्य को सतही तौर पर नहीं देखता बल्कि व्यापक एवं गहराई से देखता, समझता और जीता है। स्पष्ट है कि मंगलेश डबराल इस तथ्य से परिचित है कि 'संगीत' सिर्फ़ कानों में नहीं गूंजता बल्कि कानों के माध्यम से मन-मस्तिष्क में गूंजता है, कोमलता एवं मिठास के साथ भीतर ही भीतर बेचैन और तैयार करता है प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझने और परिवर्तित करने के लिए। संगीत के माध्यम से अपनी बात को जन-जन तक पहुंचाने का विचार मंगलेश डबराल के आन्तरिक धैर्य, गहराई एवं परिपक्वता को दर्शाता है।

समाज में व्याप्त छुआ-छूत, जाति-भेद, ऊँचे नीच की संकीर्ण मानसिकता एक कलाकार की प्रतिभा को किस तरह न सिर्फ़ पनपने से रोकती है बल्कि उसे नेतस्तानाबूद करने की चेष्टा भी करती है, इसका प्रकटीकरण भी कवि मंगलेश ने बड़ी यथार्थता से किया है। केशव अनुरागी अपने ढोल की आवाज़ से प्रकृति में बसे हर एक संगीत को ध्वनित करते है परंतु जाति से अछूत होने के कारण उसकी प्रतिभा का कोई मूल्य नहीं है। समाज में वे तिरष्कृत एवं बहिष्कृति है। उनका कोई शिष्य नहीं है। अपनी सारी प्रतिभा एवं योग्यता के बावजूद अछूत होने के कारण उसे सरकारी तंत्र के आगे झुकना पड़ता है-

"ढोल की तालों से खेलता गेंद की तरह
कहता सुनिए यह बादलों का गर्जन और यह रही
पानी की पहली कोमल बूंद या फुहार
यह झमाझम बारिश यह बहने लगी नदी
यह बना एक सागर विराट प्रकृति गुंजायमान

[288] **डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, प्रतिकार, पृष्ठ 91**

लेकिन मैं हूँ एक अछूत कौन मुझे कहे कलाकार

मुझे ही करना होगा आजीवन पायलागन महाराज जय हो सरकार।"[289]

मंगलेश डबराल के कई दिनों के साधना का फल है 'केशव अनुरागी' कविता जिसमें उन्होंने बताया है कि केशव अनुरागी की त्रासदी व्यक्तिगत नहीं है बल्कि हर उस व्यक्ति की है जो हाशिये पर ढकेले जा चुके है। केशव अनुरागी की मृत्यु संगीत की और संगीतकार की मौत है।

इस तरह से उनकी कई कविताओं में संगीत तत्त्व देखा जा सकता है। मंगलेश डबराल की रूचि, ज्ञान एवं पकड़ संगीत में कितनी अधिक है यह उनकी कविताओं को पढ़कर पता चलता है। 'संगतकार', अमीर खाँ, 'रचना प्रक्रिया', 'केशव अनुरागी', 'गुणानंद पथिक', 'राग दुर्गा', 'गाता हुआ लड़का', इत्यादि मंगलेश डबराल की संगीत एवं संगीतकार के विविध पहलूओं को व्यक्त करने वाली बेजोड़ कवितायें हैं।

शैली- विधान

शैली भाषा का वह गुण है जो भावना व विचारों को साकार करता है। 'शैली' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'शील' से मानी जाती है।[290]

वफन का मन्तव्य है - "शैली स्वयं व्यक्ति है। वह उसकी प्रकृति का अंग है।"[291]

शैली काव्य-संरचना का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। काव्य का शैली- विज्ञान मनोगत भावों को मूर्त रूप प्रदान करने का सहज साधन है। शैली स्वयं बोलती है और साहित्यकार के व्यक्तित्व के अनुरूप ही उसकी शैली का गठन होता है

[289] **वही, केशव अनुरागी, पृष्ठ 29**

[290] **डॉ. नगेन्द्र (संपादक), हिन्दी काव्यालंकार - सूत्रवृत्ति (भूमिका), पृष्ठ 54**

[291] Style is man's own. It is a part of his nature. Baffon from N.D.T.

। शैली के माध्यम से ही साहित्यकार की पहचान होती है। कवि मंगलेश डबराल ने अपनी शैली के द्वारा एक अलग ही चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिए -

"तुम्हारा प्यार लड्डुओं का थाल है।
जिसे मैं खा जाना चाहता हूँ
तुम्हारा प्यार एक लाल रूमाल है
जिसे मैं झंडे-सा फहराना चाहता हूँ
तुम्हारा प्यार एक पेड़ है
जिसकी हरी ओट से मैं तारों को देखता हूँ
तुम्हारा प्यार एक झील है
जहाँ मैं तैरता हूँ और डूबता हूँ
तुम्हारा प्यार पूरा गाँव है
जहाँ मैं होता हूँ।"[292]

इन पंक्तियों में बड़ी अद्भुत शैली में मंगलेश डबराल ने प्रेम का वर्णन करते हुए बताया है कि यहाँ प्रेम लड्डुओं का थाल है जिसे कवि खा जाना चाहते हैं। वे प्रेम की उपमा लाल रूमाल से करते हुए उसे झंडे के समान फहराना चाहते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि वे प्रेम को छिपाकर नहीं रखना चाहते। कवि को प्रेम एक पेड़ के समान लगता है जिसकी ओट से हम आकाश के झिलमिल तारों को देख सकते हैं। कवि झील की उपमा इसलिए देते हैं क्योंकि उनके प्रेम में झील जैसी गहराई है। प्यार के लिए गाँव का उपमान एकदम नया प्रयोग है, क्योंकि गाँव सरलता, सहजता एवं निश्चलता का प्रतीक होता है। इस वर्णन में हम उनकी अद्भुत शैली प्रयोग के दर्शन कर सकते हैं।

[292] **डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, तुम्हारा प्यार, पृष्ठ 39**

मंगलेश डबराल ने इस तरह से अपनी काव्य-रचना में विविध शैलियों का प्रयोग किया है जो उनके विस्तृत ज्ञान और अनुभव का परिचायक है। उनके साहित्य में अनेक प्रकार की शैलियों - चित्रात्मक शैली, यथार्थवादी शैली, संस्मरणात्मक शैली, फैंटेसी आदि का प्रयोग देखने को मिलता है।

निष्कर्ष

मंगलेश डबराल अपनी कविताओं द्वारा कुछ नयापन दिखाना चाहते हैं। मंगलेश डबराल की काव्य - भाषा में हम अनूठे प्रयोगों की सूक्ष्मता देख सकते हैं जैसे 'पहाड़ पर लालटेन' यह शीर्षक ही एक महत्वपूर्ण स्थानग्रहण कर लेता है।

उनकी सभी कविताओं में उनकी चेतना ही नहीं समाज और संस्कृति के प्रति उसकी प्रतिबद्धता भी स्पष्ट हो रही है। कहना न होगा कि यह उनकी न केवल काव्य कौशल ऊँचाई है, बल्कि कविता में नयापन लाने की संपूर्ण अभिव्यक्ति है। मंगलेश डबराल बड़ी बारीकि से संकेतों में और सरल भाषा में लिखते हैं। उनको सपाटबयानी के कवि भी कहा जाता है परंतु अप्रचलित प्रतीकों के कारण इनकी कविता को समझने में पाठक कठिनाई का अनुभव कर सकता है। उनकी कविताओं का स्थायीभाव अवसाद, उदासी, दुःख है इसकी चर्चा पिछले अध्यायों में हो चुकी है। लेकिन इस अवसाद के साथ कवि की काव्यानुभूति का निश्छल संबंध है। कवि मंगलेश कविता में कथ्य और शिल्प का निरंतर बेहतर संयोजन करते हैं। उन्होंने समकालीन कविता की भाषा को निजी तरीके से समृद्ध किया है।

कवि की भाषा मंजी हुई है। जहाँ तक शिल्प और शैली का सवाल है, वहाँ तक हर कवि अभिव्यक्ति के लिए अपनी एक ख़ास शैली रखता है। शिल्प में कवि का अपना व्यक्तित्व छिपा रहता है। मंगलेश एक अंतर्मुखी के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं। उनका शिल्प विधान प्रकृतिदत्त है। सुमित्रानंदन पंत के समान मंगलेश डबराल भी प्रकृतिपुत्र नज़र आते हैं। उनकी कविताओं पर कई भाषाओं का मिश्रित प्रभाव देखा जा सकता है जैसे अरबी, फ़ारसी, तुर्की, अंग्रेज़ी, और कुछ कुछ जगहों पर देशज शब्द। यह परिणाम उनके समय तथा विभिन्न आंदोलनों और घटनाओं का है।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि मंगलेश डबराल की भाषा-शैली संयत, संगठित और सरल है। अपने सहज कथन और शैली के कारण वे अपनी बातें कहने में पूर्णरूप से माहिर है। मंगलेश डबराल की भाषा शैली में पांडित्य प्रदर्शन नहीं है बल्कि समाज के प्रति एक आम आदमी के दृष्टि की संवेदना है।

आधार ग्रंथ

1) डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, राधाकृष्ण प्रकाशन (दिल्ली), संस्करण 2021
2) डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन (दिल्ली), संस्करण 2022
3) डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, राधाकृष्ण प्रकाशन (दिल्ली), संस्करण 1997
4) डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, वाणी प्रकाशन (नयी दिल्ली), संस्करण 2004
5) डबराल मंगलेश, कवि ने कहा, किताबघर प्रकाशन, संस्करण 2008
6) डबराल मंगलेश, नए युग में शत्रु, राधाकृष्ण प्रकाशन (नयी दिल्ली), संस्करण 2013

संदर्भ ग्रंथ

1) सत्यप्रकाश (डॉ.) मिश्र (संपादक), काव्य भाषा पर तीन निबंध : रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन - इलाहाबाद, संस्करण 1989 (प्रथम)
2) रांगेय (डॉ.) राघव, आधुनिक हिंदी कविता में विषय और शैली, राजपाल एंड संन्ज़ प्रकाशन - दिल्ली, संस्करण 1962
3) नरेश (डॉ.), आधुनिक हिंदी कविता में उर्दू के तत्व, राजपाल एंड संन्ज़ प्रकाशन - दिल्ली, संस्करण 1973 (प्रथम)
4) मलयज, प्र. सं. निर्मला जैन, सं. रामेश्वर राय, निबंधों की दुनिया: मलयज, काव्यभाषा का इकहरापन (निबंध), वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली, संस्करण 2012

5) रामप्रकाश (डॉ.), मानक हिन्दी संरचना एवं प्रयोग, सन्मार्ग प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2000

6) गुरु (आचार्य) कामताप्रसाद, हिंदी व्याकरण, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण 2009

7) गुप्त (डॉ.) सुरेशचंद्र, आधुनिक हिंदी कवियों के काव्य सिद्धांत, हि. सा. संसार, दिल्ली, पृष्ठ 18, संस्करण 1960

8) मिश्र स्मिता, गीतफरो: संवेदना और शिल्प, वाणी प्रकाशन, संस्करण 1995

9) सिंह गुरचरण, पंडित सुमन, नरेन्द्र मोहन रचनावली - 1, खण्ड - 4, संजय प्रकाशन, संस्करण 2020

10) पाटिल (डॉ.) मधुसूदन, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में बिम्ब-विधान, अर्बन एस्टेट - हिसार, संस्करण 1992

11) कुमार विजय, साठोत्तरी हिन्दी कविता, परिवर्तित दिशाएं, प्रकाशन संस्थान - नई दिल्ली, संस्करण 1986

12) त्रिपाठी अरविंद, कवियों की पृथ्वी, आधार प्रकाशन - हरियाणा, संस्करण 2004

13) गुप्त (डॉ.) उमाकांत, नई कविता के प्रबंध काव्य, शिल्प और जीवन दर्शन, वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली, संस्करण 2000 [गूगल बुक्स]

14) डॉ. नगेन्द्र (संपादक), हिन्दी काव्यालंकार - सूत्रवृत्ति, आत्माराम एंड संस प्रकाशन, संस्करण 2011 [इपुस्तकालय]

षष्ठ अध्याय

उपसंहार

सन् १९४८ में टिहरी गढ़वाल जिले के काफलपानी गाँव में जन्म लेनेवाले मंगलेश डबराल समकालीन कवियों में से एक प्रमुख हस्ताक्षर है । मंगलेश डबराल बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कवि हैं । लेकिन उनका कवि व्यक्तित्व ही सर्वाधिक सराहनीय है। मंगलेश कवि, अनुवादक, पत्रकार, गद्य लेखक आदि अनेक रूपों में साहित्य की सेवा में सक्रिय रहे थें। कवि मंगलेश का जीवन विविधताओं से परिपूर्ण है यह उनकी कविताओं को पढ़ते हुए पता चलता है। मंगलेश जी सबसे अधिक मार्क्सवाद तथा नक्सलवाद से प्रभावित कवि हैं। इसलिए उनकी कविता, जनता को प्रबुद्ध और शोषण व्यवस्था से लड़ने के लिए उकसाती है। उन्होंने 'हिन्दी पेट्रियट', 'प्रतिपक्ष', 'पूर्वग्रह', 'अमृत प्रभात', 'जनसत्ता', 'सहारा टाईम्स' आदि पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी पत्रकारिता को एक नई दिशा दिलाई हैं।

मंगलेश डबउराल के सात काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं । 'पहाड़ पर लालटेन', 'घर का रास्ता', 'हम जो देखते हैं', 'आवाज़ भी एक जगह हैं', 'नए युग में शत्रु', 'स्मृति एक दूसरा समय है' और 'पानी का पत्थर'। इनका पहला काव्य संग्रह 'पहाड़ पर लालटेन' में प्रकृति के साथ मानव संबंध स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है । सामाजिक विषमताओं को गंभीरता से जाना पहचाना है। इसमें मध्यम वर्ग की बेबसी, विवशता, शोषण और राजनीति संबंधी कविताएँ संकलित हैं । दूसरा काव्य संग्रह 'घर का रास्ता' में राजनीति, प्रेम, नारी, तानाशाही, साम्राज्यवादी शक्तियाँ, प्रकृति के प्रति प्रेम एवं मानव संबंध और व्यवस्था के प्रति आक्रोश मुखरित है । उनकी कविताएँ जीवन के प्रति आसक्ति उपजाती हैं । पहाड़ जैसे समाज को बदलने की हडबडी के बजाय कविता में मानवीय रिश्तों को बनाए रखने की दिशा में कवि प्रयत्नशील है । तीसरा काव्य-संग्रह 'हम जो देखते हैं' में नारीवाद, संत्रास, पीड़ा, राजनीति आदि का यथार्थ चित्रण किया गया है । चौथा काव्य संग्रह 'आवाज़ भी एक जगह है' में इनकी कविताएँ संगीत के अनेक नये आयामों को उजागर करती हैं । जैसे संगतकार, गुणानंद पथिक, केशव अनुरागी आदि । इसमें सामाजिक राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त अन्याय, अत्याचार और अन्य विसंगतियों की कटु आलोचना की गयी है ।

'नये युग में शत्रु' मंगलेश डबराल का पाँचवा काव्य-संग्रह है जिसमें कवि 21वीं सदी के शत्रुओं की जाँच-पड़ताल बड़े ही तीखे स्वर में करते हुए नजर आते हैं। आवारा मुद्रा, भूमण्डलीकरण, अमेरिकीकरण आदि विषयों पर कटाक्ष करते हुए कवि मंगलेश डबराल इस संग्रह के साथ उपस्थित हुए हैं। आज की भयावह व्यवस्था के ख़िलाफ़ विरोध करना प्रत्येक साहित्यकार का दायित्व है और वो दायित्व मंगलेश डबराल भी बख़ूबी निभाते दिखते हैं। 'स्मृति एक दूसरा समय है' मंगलेश डबराल का छठा कविता संग्रह है। यह उनके जीवन काल में, 2020 में प्रकाशित उनका आख़िरी संग्रह है। जैसे कि इस संग्रह का नाम है, इसकी कविताएं भी स्मृतियों से भरी हैं। मंगलेश डबराल के तमाम कविता संग्रहों में स्मृति को एक मज़बूत सहारे के रूप में लिया गया है। कवि अपने अनुभवों को, अपनी स्मृतियों को अपनी कविताओं के माध्यम से तरह तरह के बिंब और प्रतीकों द्वारा उन्हें मूर्त रूप देने की चेष्टा करते हैं।

साल 2020 में कोरोना संक्रमण से कवि मंगलेश डबराल की मृत्यु हुई। 'स्मृति एक दूसरा समय है' भले ही उनके जीवन काल में प्रकाशित आखिरी कविता संग्रह है, परंतु उनकी श्रमशील रचनात्मकता की स्मृति में उनके मरणोपरांत भी एक कविता संग्रह राजकमल प्रकाशन द्वारा पिछले ही साल (2023 में) प्रकाशित किया गया है। उनके इस कविता संग्रह का शीर्षक है 'पानी का पत्थर'। जो कविताएं इस संग्रह में संकलित हैं, उन कविताओं को वे शायद और अधिक विस्तार देते या फिर उसमें कुछ और जोड़ते। उनके सच्चे और ईमानदार पाठक उनको लगातार पढ़ना चाहते हैं। ऐसे पाठकों के लिए यह मरणोपरांत प्रकाशित कविता संग्रह पूंजी के समान हैं।

मंगलेश डबउराल की कविताएँ सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितिगति के बारे में विश्लेषण करती हैं । इनकी कविताएँ संगीतकारों की दयनीय परिस्थितियों के बारे में दर्शाती हैं। जो पाठक को बार-बार पढ़ने के लिए मजबूर करती हैं। उनकी कविताएँ वास्तविक जीवन की कविताएँ हैं जो अन्याय, शोषण का खुलकर विरोध करने के लिए प्रेरणा देती है। मंगलेश डबराल की कविताओं में जितना सामाजिक चित्रण मिलता है उतना अन्यत्र नहीं। मंगलेश डबराल पूँजीपति समाज का अत्याचार, शोषितों के आर्तनाद का चित्रण ऐसा करते हैं कि हमे ऐसा लगता है कि वह आवाज हमारे आस-पास ही गूँज रही है। नारी समस्या पर उन्होंने अपनी कलम चलायी है। हमारा समाज पहले से ही नारी का शोषण करते आया है। नारी की पीड़ा, उन पर दबाव, नारी प्रेम के जाल में फँसकर कैसे धोखा खाती है, नारी पर अत्याचार, अन्याय कैसे करते हैं आदि मंगलेश डबराल की कविताओं का प्रमुख विषय है।

मंगलेश का राजनीतिक चित्रण भी प्रभावशाली है। वे भ्रष्ट राजनीतिज्ञों का पर्दाफाश करते हैं। मंगलेश राजनीति क्षेत्र में व्याप्त अन्याय, अत्याचार, दबाव आदि का विरोध करते हैं। वे किसी पार्टी या नेताओं के बारे में न कहकर उनको सलाम मारनेवाले कवियों पर व्यंग्य करते हैं। सिर्फ़ कुर्सी के लिए लड़ाई करनेवालों पर प्रहार करते हैं। 'साम्राज्ञी' कविता आपात्काल की कविता है। मंगलेश सिर्फ साक्षात्कार के नहीं बल्कि मार्मिक साक्षात्कार के कवि हैं।

मंगलेश डबराल की भाषा शैली सहज सुन्दर है। वे बिम्ब योजना, प्रतीक योजना, शब्दों का चमत्कार, गद्यात्मक शैली, संगीतात्मकता, छन्दमुक्त प्रयोग करते हैं। उन्होंने अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, उर्दू शब्दों का प्रयोग भी किया है। उन्होंने छोटी-छोटी कविताओं के साथ-साथ लम्बी कविताएँ भी लिखी हैं पर काफ़ी कम। मंगलेश डबराल ने संगीत के स्पर्श से अपनी काव्य भाषा को जादू की तरह जगाया है। कवि शमशेर के बाद मंगलेश अपनी नयी पीढ़ी के अकेले कवि हैं, जिन्होंने कविता और संगीत के रिश्ते को एक बार फिर से जोड़ने का प्रयास किया। जैसे 'शमशेर की शमशेरीयत' उसी तरह से 'मंगलेश की मंगलेशियत'। उनकी कविता में सन्नाटों को सार्थक आवाज़ें पहनायी गयी हैं। कवि कुछ न कहते हुए भी उनकी कविताएँ बहुत कुछ कहती हैं।

मंगलेश डबराल ने अपनी कविताओं में यथार्थता, प्रेमानुभूति, प्रकृति वर्णन, नारीवाद, आशावाद, मध्यमवर्गीय जिन्दगी का चित्रण, करुणा, दुख अवसाद, संत्रास, निराशा का चित्रण, संघर्ष, मानवीय तथा पारिवारिक रिश्तों का आत्मीयता से जोड़ना, शहरी जीवन, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, भूमंडलीकरण, भाग्यवाद का विरोध पर्यावरण तथा विज्ञापन आदि विशेषताओं को अपनी कविताओं में सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना के अंतर्गत किया है।

इस तरह मंगलेश डबराल एक सामान्य जीवन स्तर में, विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए ऊँचाई के शिखर तक पहुँचे हैं। अपनी जिजीविषा प्रवृत्ति, परिश्रमशीलता और अप्रतिम प्रतिभा का विकास करते हुए व्यक्तित्व का विकास करना ही उनका ध्येय रहा है। वे समकालीन कविता के सशक्त कवि हैं। उनका रचना कर्म सार्थक एवं सोद्देश्य है। कुल मिलाकर उनकी सभी कविताएँ बार-बार पढ़ने को मजबूर करती हैं। इन कृतियों के पीछे उनका जो परिश्रम है उसकी भाँति गौरव लाने का काम ये कृतियाँ करती हैं।

परिशिष्ट - क

साक्षात्कार - आलोचक रविभूषण (30 जनवरी 2024)

1. कवि मंगलेश डबराल से आपकी मुलाक़ात कब हुई? आप दोनों के रिश्ते के बारे में या फिर कोई ऐसी स्मृति उनसे जुड़ी हुई, जो आप हमारे साथ साझा करना पसंद करेंगे?

> जहां तक मंगलेश डबराल से मिलने का सवाल है, इसका जवाब दो तरह से देना चाहूंगा। उनसे मिलने के पहले उनकी कविताओं से मेरी भेंट हो चुकी थी। पहली बार उनकी कविताएं मैंने 'आलोचना' में 1968 में पढ़ी थीं। नामवर सिंह 'आलोचना' के सम्पादक हो चुके थे। बाद में सत्तर के दशक में, जब लघु पत्रिकाओं का दौर चला था, मैं लगभग सभी लघु पत्रिकाओं का पाठक था। उनमें से अनेक पत्रिकाओं में मंगलेश की कविताएं पढ़ने को मिली थीं। जब 'पहाड़ पर लालटेन' अस्सी दशक के आरंभ में प्रकाशित हुआ था, मैंने वह किताब मंगाई। इस प्रकार मंगलेश के कवि-रूप से मेरा संबंध बना। हम जिनसे संवादरत नहीं होते और न उनसे मिल पाते हैं, रचना के माध्यम उनसे एक संबंध स्थापित हो जाता है। मंगलेश से पहली भेंट इलाहाबाद में 'पहल' सम्मान के अवसर पर हुई। शेखर जोशी को 'पहल' सम्मान दिया जा रहा था और ज्ञानरंजन ने उनकी कहानियों पर बोलने के लिए मुझे आमंत्रित किया था। हिंदी के सभी प्रतिष्ठित कवि-लेखक वहां उपस्थित थें। उस मुलाक़ात के पहले उनसे फ़ोन पर दो-तीन बार बातें हुई थीं। मंगलेश से लगभग पच्चीस वर्ष पहले जो भेट हुई भेट हुई थी, उसके बाद मुलाक़ात का सिलसिला बना रहा। दिल्ली में अनीता की शल्य-चिकित्सा के संबंध में, वर्ष में दो-तीन बार जाना होता था। उनसे मिलने विष्णु खरे, मंगलेश, सुंदरचंद ठाकुर और अन्य कई कवि-लेखक आते थें। अनीता की पहचान एक प्रमुख कवयित्री के रूप में बनने लगी थी। मंगलेश से हम लोगों की आत्मीयता बढ़ती रही, प्रगाढ़ होती गई। रांची, कोलकाता, शांतिनिकेतन, दिल्ली, देहरादून में हम मिलते रहे थें। फ़ोन पर संवाद होता रहा था। दिल्ली में मयूर विहार वाले आवास में भी हम लोग गए थें। उस समय उनकी मां से भी भेंट हुई थी। अल्मा, उनकी बेटी से, उनके अंतिम दिनों में, जब वे अस्पताल में थे, बातें हुई थीं। मंगलेश में गहरी संवेदना थी। उनका शास्त्रीय गायन भूला नहीं जा सकता। वीरेन और मंगलेश की अद्भुत घनिष्ठता थी। वीरेन डंगवाल भी मेरा प्रिय मित्र था। मंगलेश से पहले उससे मेरी पहली भेंट 1991 में हुई थी जब आलोक धन्वा को 'बनारसी प्रसाद भोजपुरी सम्मान' दिया जा रहा था। वीरेन और मंगलेश दोनों मेरे प्रिय आत्मीय मित्र थें। वीरेन पहले चले गए, बाद में मंगलेश भी। ढेरों स्मृतियां हैं, खट्टी-

मीठी। प्रिय और एकाध अप्रिय भी। मैंने मंगलेश पर ही सबसे अधिक लिखा, उनके निधन के पश्चात। अब मंगलेश की केवल यादें हैं और हैं उनकी सब किताबें।

2. हम देखते हैं कि प्रत्येक युग के साहित्यकारों पर किसी-न-किसी आंदोलन का या फिर किसी विशिष्ट वाद का प्रभाव होता ही है। कवि मंगलेश डबराल पर किस विचारधारा या वाद का प्रभाव देखा जा सकता है?

> मंगलेश पर नक्सलवादी आंदोलन का प्रभाव था। उस आंदोलन ने केवल हिंदी कवियों को ही नहीं, भारतीय कवियों को भी प्रभावित किया था। साठ के दशक के अंत में जिन कवियों ने कविता लिखना आरंभ किया था या फिर साठ के दशक में जो लिख रहे थें, उन पर, कुछ कवियों को छोड़कर इस आंदोलन का प्रभाव पड़ा। नक्सलवादी आंदोलन ने केवल राजनीति को ही नहीं, कला, साहित्य, संस्कृति को भी एक भिन्न, क्रांतिकारी दृष्टि दी। नक्सलवादी आंदोलन की जो मार्क्सवादी लेनिनवादी क्रांतिकारी विचारधारा थी, वह मंगलेश और उनके मित्र कवियों को प्रभावित कर चुकी थी। उत्तराखंड में बिहार और उत्तर प्रदेश की तरह इस राजनीति का प्रभाव तुरंत नहीं पड़ा और न वैसी सक्रियता थी पर मंगलेश ने 'पहाड़ पर लालटेन' जला दी। मंगलेश नक्सलवादी आंदोलन से प्रभावित थे, उसकी उपज भी आप चाहे, तो कह सकती है। नक्सलवादी आंदोलन के बिखराव के बावजूद उससे प्रभावित कवियों ने, चन्द अपवादों को छोड़कर परिवर्तनकारी राजनीति और विचारधाराओं से अपने को अलग नहीं किया। बड़ी बात यह रही कि इसने यथार्थ को देखने, समझने और उसे बदलने की भी एक भिन्न दृष्टि दी। सत्तर के दशक के मध्य में, आपातकाल लागू किए जाने और उसके पहले जयप्रकाश नारायण की 'संपूर्ण क्रांति' से मंगलेश डबराल का कोई संबंध नहीं रहा। आलोक धन्वा के यहां जैसी मुखरता है, वैसी मंगलेश के यहां नही।

3. सर, आलोचना पर कवि मंगलेश डबराल का जो कथन है, जिसका उल्लेख आपके आलेख में भी देखने को मिलता है; वे लिखते है कि

"हिन्दी की आलोचना का रचना से कोई रिश्ता नहीं है। वह रचना के इधर-उधर से, अगल-बगल से झाँक-झूँक कर न्याय कर देती है। रचना के भीतर जाने से कतराती है।" आप स्वयं एक आलोचक हैं, तो आपकी इसपर क्या राय है?

> मंगलेश के इस कथन से पूर्णतः सहमत नहीं हुआ जा सकता कि हिंदी आलोचना रचना-विमुख है। जहां तक रचना के भीतर प्रवेश की बात है, यह सच है कि बहुत कम आलोचक रचना की 'क्लोज़ रीडिंग' करते हैं। बाज़ारवाद के दौर में झटपट कुछ लिख देने का चलन अधिक बढ़ा है। साही और मलयज की आलोचना को देखें, वह एक बड़ी आलोचना है। नामवर सिंह के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। मंगलेश की शिक़ायत उनके अपने समय की आलोचना से है, जिसमें आंशिक सच्चाई है। आलोचना अब पहले की तरह रचना - केंद्रित नहीं रही। उसका परिसर व्यापक हुआ है। विशुद्ध व्यावहारिक आलोचना अब कम है। आलोचना रचना-केंद्रित होने के साथ ही अब समय-समाज-सापेक्ष अधिक है। अस्सी के दशक से केवल भारत में ही नहीं, पूरे विश्व में जिस प्रकार बदलाव आरंभ होता है, उससे न तो कृति अलग रहती है, न आलोचना। बाहर का दृश्य क्रमशः भयावह होता गया है। आलोचना केवल रचना को उसके भीतर से ही नहीं, बाहर से भी देखती है। मैं किसी बाह्यारोपण की बात नहीं कर रहा, स्वयं रचना के भीतर भी ऐसे स्थल और संकेत दिखाई देंगे। आलोचक न्यायाधीश नहीं है। साहित्य-सृजन की तरह आलोचना भी गंभीर कर्म है। गंभीरता का ह्रास सभी क्षेत्रों में है। हिंदी आलोचना का रचना से सदैव एक गंभीर रिश्ता रहा है। शिकायतें की जानी चाहिएं, पर ऐसे रिमार्क हड़बड़ी या जल्दबाज़ी में किए गए हैं।

4. आप और कवि मंगलेश डबराल, दोनों के विषय ज़्यादातर समाज और सत्ता से जुड़े हुए नज़र आते हैं। विषय भले ही समान हैं, परंतु विचार अलग होते हैं। क्या किसी बात को लेकर आप कवि मंगलेश डबराल से असहमति व्यक्त करना चाहेंगे?

> मंगलेश और मेरी चिंताएं लगभग समान हैं। समय और समाज को लेकर जितनी बेचैनियां उनमें थीं, लगभग उतनी ही मुझमें भी हैं। अस्सी के दशक से अबतक जो परिर्वतन हुए हैं, वे किसी भी अर्थ में समान्य जन ही नहीं, प्रकृति और पृथ्वी के भी विरोध में हैं। मंगलेश की दृष्टी सघन और मर्मभेदी थी। मंगलेश की कविताओं में ही नहीं, उनकी गद्य-रचनाओं में भी उनकी परेशानियां झलकती हैं। शायद ही कोई संवेदनशील और विचारवान मनुष्य होगा, जो नवउदारवादी

अर्थव्यवस्था के बाद से प्रायः सभी क्षेत्रों में हुए परिवर्तनों से सहमत हो। विचार पूर्णतः अलग नहीं हो सकते प्रगतिशीलों और मार्क्सवादियों के। कविता में विचार जिस रुप में प्रकट होते हैं, उसी रुप में आलोचना में प्रकट नहीं होते। आलोचना में संकेत और मितकथन का अधिक महत्त्व नहीं है। मंगलेश ने जिन कवियों की कविताओं के अनुनाद किए हैं, उन सभी कवियों की बिरादरी में वे हैं। जो इन सभी कवियों को आपस में जोड़ता है, वह सत्ता से असहमति ही नहीं, उससे विरोध भी है। अभी तक मेरी जानकारी में मंगलेश के अनुवाद कार्य पर गंभीरता पूर्वक विस्तार से विचार नहीं हुआ है। यह इसलिए भी ज़रूरी है कि हम हिंदी कवियों की वैश्विक बिरादरी को समझें, जानें।

5. अपने 'लोकतंत्र और साहित्य' विषय वाले व्याख्यान में आपने लोकतंत्र की बात की और कवि मंगलेश डबराल ने भी कुछ कविताएं राजनीतिक व्यंग्य के रूप में लिखी हैं। उसमें से एक कविता का शीर्षक है 'तानाशाह कहता है' -

"देखो तुम्हारी झोपड़ियों के छप्पर उड़ गए हैं
और कई रोज से तुमने कुछ नही खाया
तुम्हारी फ़सल कोई लूट ले गया है
तुम्हारे बच्चे रो रहे हैं
आसमान की ओर मुंह किए हुए
फिर भी तुम खुश रह सकते हो
अगर हमारे होकर रहो
हम तुम्हारे लिए ही आए हैं
कहता हुआ तानाशाह नेपथ्य में आता है
"जो हमारा नहीं, उसकी ख़ैर नहीं"
कहकर मुस्कुराता है"

यह व्यंग्य राजनीति पर है या समाज पर?

> इन पंक्तियों को व्यंग्य समझने में मुझे आपत्ति है। मंगलेश ने व्यंग्य परक कविताएं नहीं लिखी हैं। जो है, वह यथार्थ है। मंगलेश की 'संपूर्ण कविताएं' प्रकाशित हो चुकी हैं। अभी उनका नया संग्रह आया है 'पानी का पत्थर'। मंगलेश व्यंग्य के कवि नहीं हैं। कुछ स्थलों को देखकर ऐसा आभास हो सकता है, पर होगा वह आभास ही। मंगलेश की और अन्य कई हिंदी कवियों की 'तानाशाह' से सम्बन्धित कविताएं एक विशेष काल-खण्ड में लिखी गई हैं। इस कविता में तानाशाह अधीनता चाहता है। खुश रहने के लिए ज़रूरी है तानाशाह का होकर रहना। अंग्रेज़ी में कई ऐसी किताबें प्रकाशित हुई हैं, जो लोकतंत्र के भीतर से ही तानाशाह के जन्म को लेकर लिखी गई हैं। मंगलेश की ये काव्य-पंक्तियां लोकतंत्र की समाप्ति की ओर संकेत करती हैं। 'जो हमारा नहीं, उसकी ख़ैर नहीं' में एक धमकी है। यह कविता विस्तार से विवेचन की मांग करती है। चुनाव में जीतकर आने के बाद भी तानाशाह हुआ जा सकता है। लोकतंत्र एकतंत्र में बदल रहा है। एकतंत्र हो या अधिनायकतंत्र, मंगलेश ने उसकी बात कही है। यह एक प्रकार से ख़तरे की बजती हुई घंटी है। आपातकाल में इस तरह की कविताएं अधिक लिखी गई। इस कविता के ज़रिए यह समझा जा सकता है कि हम कैसे समय में रह रहे हैं।

6. सर, आपको मंगलेश डबराल के किस दौर की कविताएं सबसे ज़्यादा प्रभावित करती हैं?

> मंगलेश 'नए युग में शत्रु' की पहचान करने-कराने वाले प्रमुख भारतीय कवि हैं। जहां तक सबसे ज़्यादा प्रभावित होने की बात है, वह यही संग्रह है। इसके पहले के सभी संग्रह - 'पहाड़ पर लालटेन', 'घर का रास्ता', 'हम जो देखते हैं' और आवाज़ भी एक जगह है का अपना महत्त्व है, पर 'नए युग में शत्रु' संग्रह की कविताओं में समय की जो पहचान और पकड़ है, वह अद्भुत है। कविता को दशकों में बांटकर देखने का मैं कायल नहीं हूं, पर अस्सी के दशक से अबतक की हिंदी कविता पर हम एक नज़र डालें और इस दौर को भी देखें, तो इक्कीसवीं सदी की कविताओं में हम एक गुणात्मक परिवर्तन देखते हैं। नव-उदारवादी अर्थव्यवस्था के आगमन के पश्चात् हिंदी कविता का रुप-रंग भी बदलता है। नेहरू ने 'छद्म' नाम से लिखे अपने एक लेख में अपने को 'तानाशाह' कहा था, पर शायद ही किसी कवि ने उन्हें तानाशाह के रूप में देखा, उनसे असहमत कवियों ने भी नहीं। मंगलेश ने नए युग में शत्रु में बदलाव देखा। अब शत्रु पहले की तरह शत्रु नहीं रहें। उन्हें पहचानना और समझना कठिन हुआ। पहले शत्रु शत्रु की तरह दिखता था, अब बहुत संभव है, वह मित्र की तरह भी दिखे। "हमारा शत्रु कभी हमसे नहीं मिलता, सामने नहीं आता, हमें ललकारता नहीं" मंगलेश ने अपनी

एक कविता में लिखा है - "क्या करूंगा मैं सैंकड़ों हज़ारों जूते चप्पल लेकर" मंगलेश की बाद की कविताएं मुझे ज़्यादा प्रभावित करती है। इसकी एक बड़ी वजह शायद यह भी है कि ऐसी कविताएं मेरे सोच-विचार से जुड़ी हुई हैं। इनमें हमारे समय का यथार्थ है। पहले की कविताओं में भी यह था, पर बाद की कविताओं में एक तीक्ष्ण धार है, स्पष्ट कथन है, स्टैंड है, असहमति है और एक नए प्रकार का प्रतिरोध।

7. कवि मंगलेश डबराल की कुछ काव्य पंक्तियां हैं -

"शासकों का क्रूर खेल किसी युग में नहीं बदलता

वे छीनते ही आए हैं कलाकारों से

उनकी कला, उनका जीवन"

आपको क्या लगता है कि कलाकारों को इतना क्यों दबाया जाता है?

> इतिहास में हम सभी शासकों को लगभग एक ही प्रकार का देखे हैं। फ़र्क बस इतना है कि सभी शासक क्रूर नहीं होते। उनकी क्रूरता की मात्रा में अंतर होता है। शासक और कलाकार में शत्रुता है। कलाकार सत्य, न्याय, मनुष्यता, सद्भाव और भाईचारे में विश्वास रखता है। शासकों को इन सबसे बैर है। शासक केवल कवि-लेखक, विचारक-आलोचक, सिद्धांतकार, फ़िल्मकार, कलाकार से घबराता है। ये सब उनकी मुख़ालफ़त करते हैं और शायद शासक इन्हें सज़ा देता है। जेल में बंद करता है, मुकदमें कर परेशान करता है, कृतियों को प्रतिबंधित करता है, मृत्यु-दंड देता है। कलाकार आज़ादी का पक्षधर है और शासक देशी हो या विदेशी, आज़ादी का हनन करता है, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाता है। वह कलाकारों से उनकी कला ही नहीं, उनका जीवन भी छीन लेता है। वास्तविक कलाकार भय-मुक्त होता है। शासक भीतर से डरा होता है। वह नहीं जानता कि कब वह सिंहासन से उतर जाएगा। कलाएं जीवन की वाहक होती हैं और शासक जीवन का विरोधी होता है। कलाओं से उसकी दुश्मनी है। सत्ता को चुनौती देने वाले, सच बोलने वालों को हमेशा सज़ा भोगनी पड़ी है। इतिहास गवाह है कि कलाकारों ने हमेशा अपने दायित्व का निर्वाह किया है। ईसा पूर्व पांच शताब्दी पहले यूनानी दार्शनिक डायोजनीज से सिकंदर जब मिलने गया था, उसने कहा था "परे हट जा, धूप आने

दे"। विचारक, दार्शनिक, कलाकार - सब का संबंध 'धूप' से, प्रकाश से होता है, उस उजाले से, जिसमें हम चीज़ों को साफ़-साफ़ देखते हैं। शासक शब्द से, भाषा से और विचार से ही नहीं, रंगों और रेखाओं से, चित्रों और मूर्तियों से भी भय खाता है। शासक को सवाल कभी प्रिय नहीं होता और कवियों के पास सवाल होते हैं - "सवाल दर सवाल है, हमें जवाब चाहिए"। मंगलेश की कविता सत्ता (पावर) और शासक का विरोध करती है। वह प्रतिप्रश्न की कविता है। शासकों से सवाल किए जाने चाहिएं और सुक्रात से आजतक ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब प्रश्नकर्ताओं को यातनाएं दी गई हैं। शासकों की क्रूरता सदैव नहीं बनी रहती। वे कूड़ेदान में फेंक दिए जाते हैं और कवि-कलाकार सदैव अपनी कृतियों के माध्यम जीवित रहते हैं। मुक्तिबोध ने कहा था - "तय करो किस ओर हो तुम?"। कविता के पाठकों को भी तय करना है कि वे किसके साथ हैं - आततायियों के साथ या कवि के साथ? वह तटस्थ नहीं रह सकता। दिनकर ने लिखा है - "जो तटस्थ है, समय लिखेगा उनका भी अपराध।"

8. सर, भक्तिकाल की, रीतीकाल की ऐसी कई कविताएं हैं जो आज भी गाई जाती हैं। कबीर के दोहे, मीरा के भजन आदि... परंतु आज आधुनिक कविताओं का हमें उतना प्रचलन नज़र नहीं आता। इस स्थिति में क्या आज की कविता संस्कृति को गढ़ने में सक्षम है?

> खड़ी बोली जन भाषा नहीं है। भक्तिकाल और रितिकाल की अधिकांश कविताएं अवधी और ब्रजभाषा में हैं। मीरा ने राजस्थानी में भजन गाए। जनता जो बोली भाषा बोलती है, उसी में कही और रची गई कविताएं उनके कंठों में विराजती हैं। उसे बोलने में किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करना पड़ता। आधुनिक हिंदी कविता खड़ी बोली की कविता है, जिसका अपना एक सीमित पाठक वर्ग है। पहले की कविता में लय और गेयता थी, जिसे गुनगुनाया जाता था। तब कविता पढ़ी कम, सुनी और गाई या कही अधिक जाती थी। जिन्हें हम अशिक्षित कहते हैं, उन्हें कबीर के ढेर सारे पद कंठस्थ थे। वाचिक परंपरा से लिखित परंपरा में आने के बाद कविता शिक्षित पाठक वर्ग की हो जाती है। ऐसी कविता जनसंस्कृति के विकसित करने में अधिक सहायक नहीं होती। यह कवियों के साथ पाठक पर भी निर्भर करता है कि वे कविता को जन जन तक पहुंचाएं। मंगलेश से अधिक वीरेन की कविताएं लोगों को याद हैं क्योंकि उसमें एक लय है। कविता में लय और गेयता का विशेष महत्त्व है। इन दोनों को नज़रंदाज़ कर कविता व्यापक पाठक-वर्ग तक नहीं पहुंच सकती। वीरेन की

कुछ काव्य पंक्तियां देखें- "किसने आख़िर ऐसा समाज रच डाला है / जिसमें बस वही दमकता है, जो काला है" और "आए हैं जब चलकर इतने लाख बरस / इसके आगे भी चलते ही जाएँगे / आएँगे उजले दिन ज़रूर आएँगे।" छंदमुक्त कविता सहज रूप से याद नहीं रहती। मुश्किल से दो-चार पंक्तियां याद रहेंगी, पर छंदबद्ध कविता के साथ ऐसी बात नहीं है। कबीर की वाणी एक कंठ से दूसरे कंठ तक स्वतः मौजूद रही। आधुनिक कविता की एक बड़ी मुश्किल यह है कि वह केवल शिक्षित तबके के भी एक छोटे हिस्से में मौजूद है। अब अधिकांश कवि नगरवासी हैं। उनकी भाषा बदल चुकी है। वे अपनी मातृभाषा से दूर होते गए हैं। कविता का पहले एक सामूहिक पाठ होता था।

9. हिंदी भाषा को लेकर मंगलेश डबराल काफ़ी चिंता व्यक्त करते हैं। उनका एक साक्षात्कार है, जहां पर उन्होंने यह चिंता व्यक्त की है कि "हिंदी धमकी की भाषा बनती जा रही है।" क्या इस विषय पर आप कोई टिप्पणी करना चाहेंगे?

> भाषा की केवल संस्कृति ही नहीं, अपनी एक राजनीति भी होती है। शासक वर्ग अपने पक्ष में, अपने मनोनुकूल भाषा को एक नया रुप भी देता है। मंगलेश के कथन के मूल में हिंदी को हिंदू धर्म की भाषा बनाने को लेकर व्यक्त की गई चिंता है। इस भाषा में हिंसा, आतंक सब शामिल हो रहा है। पहले ऐसा नहीं था। बलात्कारी, हत्यारे, गुंडे इस भाषा में धमकियां दे रहे हैं। जो भाषा मेल-मिलाप की, भाईचारे की थी, उसे नष्ट कर एक विकृत और हिंस्र रूप प्रदान किया जा रहा है। 'धमकी की भाषा' में चिंता है, सच्चाई भी है। यह एक कवि की केवल भाषा-चिंता नहीं है, वह समाजिक और सांस्कृतिक चिंता भी है। हिंदी भाषा का इस्तेमाल सांप्रदायिक शक्तियां अपने हित में इस्तेमाल कर रही हैं। ऐसी भाषा समाज और उसकी संस्कृति को भी प्रभावित करेगी। नसरुद्दीन शाह ने 'हिंदी दिवस' पर मंगलेश की कविता सुनाई थी, जिसमें मंगलेश ने हिंदी भाषा के ज़ालिमों के हाथ में पड़ जाने की बात कही है कि 'फ' से 'फूल' लिखना चाहता था जो अब माला बनकर हत्यारों के पास है। 'अ' से 'अनार' और 'अमरूद' न लिखकर 'अनर्थ' और 'अत्याचार' लिखना पड़ रहा है। 'ख़' से 'ख़रगोश' न लिखकर 'ख़तरे' की आहट होती है। मंगलेश ने आततायियों के द्वारा पूरी वर्णमाला छीन लेने की बात कही है... "वे भाषा की हिंसा को बना देते हैं, एक समाज को हिंसा"। आततायी सत्ता भाषा को बिगाड़ती है। मंगलेश की चिंता में एक साथ भाषा, समाज और संस्कृति है, जिसे बदला जा रहा है।

10. 'मंगलेश की मंगलेशियत' से आपका क्या तात्पर्य है?

> जैसे 'शमशेर की शमशेरियत', बहुत कुछ उसी तरह मंगलेश की मंगलेशियत है। कविता कहने का एक अलग ढंग। 'कहते हैं कि ग़ालिब का है अंदाज़-ए-बयाँ और'। मंगलेश अपने सभी समकालीन कवियों में 'कहन' की दृष्टि से भिन्न है। काव्य-वस्तु तो प्रायः कई कवियों में समान है, कतिपय भिन्नताओं के बावजूद। पर मंगलेश ने अपनी एक नई काव्य-शक्ति विकसित की है, जो उन्हे अन्य कवियों से अलग करती है। इसे ही ध्यान में रखकर मैंने 'मंगलेश की मंगलेशियत' की बात की। इस पर नए, अनोखे, विशिष्ट अंदाज़ पर अलग से विस्तार से विचार की ज़रूरत है क्योंकि उनकी कविताओं में अन्य कई कलाओं की संगति भी है। विशेषतः संगीत, चित्र और फ़िल्म की। मंगलेश के 'पोएटिक आर्ट' पर बिना इस पर विचार के बात नहीं की जा सकती। वहां संगीत बजता है, चित्र दिखाई देते हैं, कुछ रंग-रेखाएं भी, कैमरे के शॉट्स भी। ये सब अन्य कवियों के यहां नही है। यह मंगलेश की कविता की निजी और विशिष्ट पहचान है और यही है मंगलेश की मंगलेशियत।

परिशिष्ट - ख

सहायक ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ

1) चतुर्वेदी विजयशंकर, पृथ्वी के लिए तो रुको, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण 2009
2) डबराल मंगलेश, पहाड़ पर लालटेन, राधाकृष्ण प्रकाशन (दिल्ली), संस्करण 2021
3) डबराल मंगलेश, घर का रास्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन (दिल्ली), संस्करण 2022
4) डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, राधाकृष्ण प्रकाशन (दिल्ली), संस्करण 1997
5) डबराल मंगलेश, आवाज़ भी एक जगह है, वाणी प्रकाशन (नयी दिल्ली), संस्करण 2004
6) डबराल मंगलेश, नए युग में शत्रु, राधाकृष्ण प्रकाशन (नयी दिल्ली), संस्करण 2013
7) डबराल मंगलेश, स्मृति एक दूसरा समय है, सेतु प्रकाशन - दिल्ली, संस्करण 2020
8) डबराल मंगलेश, पानी का पत्थर, राजकमल प्रकाशन (नयी दिल्ली), संस्करण 2023
9) वाल्मीकि ओमप्रकाश, अब और नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण 2001

संदर्भ ग्रंथ

1) अरोड़ा (डॉ.) ललिता अरोड़ा, नई कविता का अनुशीलन, भारतीय ग्रंथ निकेतन - नई दिल्ली, संस्करण 1993
2) अनंत विजय, मार्क्सवाद का अर्धसत्य, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2019
3) आप्टे वामन शिवराम (संपादक), संस्कृत हिंदी कोश, चौखंबा संस्कृत सिरीज़ ऑफ़िस - वाराणसी, संस्करण 2009
4) देवराज (डॉ.) भारतीय संस्कृति (महाकाव्यों के आलोक में), प्रकाशन शाखा - सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, संस्करण 1961 (इपुस्तकालय)
5) डबराल मंगलेश, उपकथन - पंद्रह संवाद, आधार प्रकाशन - हरियाणा, संस्करण 2014

6) डबराल मंगलेश, सिर्फ़ यही थी मेरी उम्मीद, वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली, संस्करण 2021

7) गाबा ओमप्रकाश, राजनीति-सिद्धांत की रूपरेखा, नैशनल पेपरबैक्स (नयी दिल्ली), संस्करण 2019

8) गुप्त जगदीश, नयी कविता - स्वरूप और समस्याएं, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, संस्करण 1968

9) गुप्त (डॉ.) ज्ञान चंन्द्र, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1974

10) गोविन्द रजनीश, 'समकालीन हिन्दी कविता की संवेदना, प्रकाशनघर, संस्करण 1992

11) गुप्त (डॉ.) सुरेशचंद्र, आधुनिक हिंदी कवियों के काव्य सिद्धांत, हि. सा. संसार, दिल्ली, पृष्ठ 18, संस्करण 1960

12) गुप्त (डॉ.) उमाकांत, नई कविता के प्रबंध काव्य, शिल्प और जीवन दर्शन, वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली, संस्करण 2000 [गूगल बुक्स]

13) गुप्त (डॉ.) मदनगोपाल, मध्यकालीन हिंदी काव्य में भारतीय संस्कृति - पंद्रहवीं तथा सोलहवीं शतियों के हिन्दी-काव्या में प्रतिबिम्बित भारतीय संस्कृति एव समाज का अध्ययन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस (दिल्ली), संस्करण 1968 (गूगल बुक्स)

14) गुरु (आचार्य) कामताप्रसाद, हिंदी व्याकरण, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण 2009

15) कुमार अंबुज, अतिक्रमण (अपेक्षा), राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण 2019

16) कुमार कृष्ण, समकालीन कविता का बीजगणित, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2014

17) कुमार विजय, कविता की संगत, आधार प्रकाशन - हरियाणा, संस्करण 2012

18) मलयज, प्र. सं. निर्मला जैन, सं. रामेश्वर राय, निबंधों की दुनिया : मलयज, काव्यभाषा का इकहरापन (निबंध), वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली, संस्करण 2012

19) मिश्र शिवकुमार, मार्क्सवादी साहित्य चिंतन, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2001

20) मिश्र स्मिता, गीतफरोश : संवेदना और शिल्प, वाणी प्रकाशन, संस्करण 1995

21) मिश्र (डॉ) सरजू प्रसाद, समकालीन हिंदी कविता के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर, अमन प्रकाशन (कानपुर), संस्करण 2011

22) नरेश (डॉ.), आधुनिक हिंदी कविता में उर्दू के तत्व, राजपाल एंड संन्ज़ प्रकाशन - दिल्ली, संस्करण 1973 (प्रथम)

23) नगेन्द्र (डॉ.) (संपादक), हिन्दी काव्यालंकार - सूत्रवृत्ति, आत्माराम एंड संस प्रकाशन, संस्करण 2011 [इपुस्तकालय]

24) पाण्डेय मैनेजर, शब्द और कर्म, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1997

25) पंत सुमित्रानन्दन, उत्तरा, भारती भण्डार प्रकाशन - इलाहाबाद, संस्करण 2006

26) पाटिल (डॉ.) मधुसूदन, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में बिम्ब-विधान, अर्बन एस्टेट - हिसार, संस्करण 1992

27) रमण (डॉ.) रेवती, समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य, नवनीत प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 1994

28) राजदान (डॉ.) रंजना, इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता और जमीनी जुड़ाव, भारत भारती - दिल्ली, संस्करण 2010

29) राजपूत (डॉ.) विद्यावती जी., मंगलेश डबराल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, सुयश प्रकाशन, संस्करण 2023

30) रामप्रकाश (डॉ.), मानक हिन्दी संरचना एवं प्रयोग, सन्मार्ग प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2000

31) रांगेय (डॉ.) राघव, आधुनिक हिंदी कविता में विषय और शैली, राजपाल एंड संन्ज़ प्रकाशन - दिल्ली, संस्करण 1962

32) सिंह (डॉ.) वीरेन्द्र, साहित्य और साहित्येतर संवाद सूत्र, रचना प्रकाशन - जयपुर, संस्करण 1999 [इपुस्तकालय]

33) शर्मा रमेश चंन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, विद्या प्रकाशन, संस्करण 2018

34) सिंह गुरचरण सुमन पंडित (सं), नरेन्द्र मोहन रचनावली – 1

35) सिंह (डॉ) प्रेम, मानवतावाद की अवधारणा और भावानीप्रसाद मिश्र का काव्य, राज सूर्य प्रकाशन, संस्करण 2014

36) सिंह (डॉ.) फणीश, हिंदी साहित्य : एक परिचय, राजकमल प्रकाशन - नई दिल्ली, संस्करण 2006

37) शर्मा लीलाधर 'पर्वतीय', भारतीय संस्कृति कोश, पृ० 929, राजपाल एंड संस प्रकाशन - दिल्ली, संस्करण 2007

38) सिंह रामधारी 'दिनकर' , संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन - उत्तर प्रदेश, संस्करण 2011

39) राधाकृष्णन सर्वपल्ली (विश्वंभरनाथ त्रिपाठी - अनु), स्वतंत्रता और संस्कृति, गीतांजलि प्रकाशन, संस्करण 2020

40) कुमार विजय, साठोत्तरी हिन्दी कविता : परिवर्तित दिशाएं, प्रकाशन संस्थान- नई दिल्ली, संस्करण 1986

41) सत्यप्रकाश (डॉ.) मिश्र (संपादक), काव्य भाषा पर तीन निबंध : रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन - इलाहाबाद, संस्करण 1989 (प्रथम)

42) सिंह रामधारी 'दिनकर', राष्ट्र भाषा और राष्ट्रीय एकता (भाषण और निबंधों का संकलन), लोकभरती प्रकाशन-इलाहाबाद, संस्करण 2020 (गूगल बुक्स)

43) सिंह (प्रो) दिलीप, भाषा साहित्य और संस्कृति शिक्षण, वाणी प्रकाशन - नई दिल्ली, संस्करण 2007 (गूगल बुक्स)

44) सिंह गुरचरण, पंडित सुमन, नरेन्द्र मोहन रचनावली - 1, खण्ड - 4, संजय प्रकाशन, संस्करण 2020

45) शर्मा (डॉ) जयप्रकाश , समकालीन हिन्दी काव्य : दशा और दिशा, अनंग प्रकाशन, संस्करण 2004

46) तिवारी (डॉ.) यतींद्र - नवें दशक की हिंदी कविता, सरस्वती प्रकाशन, सरस्वती प्रकाशन, संस्करण 1993

47) त्रिपाठी अरविंद, कवियों की पृथ्वी, आधार प्रकाशन - हरियाणा, संस्करण 2004

48) उपाध्याय (डॉ.) रामजी, भारत की प्राचीन संस्कृति, किताब महल प्रकाशन - इलाहाबाद, संस्करण 1948 (इपुस्तकालय)

49) विश्वास विनय, आज की कविता, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2019

पत्रिका

1) आजकल, अंक- 22

2) आलोचना 2003

3) दस्तावेज़, अंक - 13-14

4) साक्षात्कार, अगस्त 2004

अंतर्जाल

1) प्रियदर्शन, मंगलेश डबराल: राजनीतिक चेतना और मानवीय आभा से दीप्त कवि का जाना (लेख), बीबीसी हिंदी, bbc.com, 9 दिसंबर 2020
2) पचौरी सुधीश, 'मंगलेश को मंगलेश ही रहने दो देवत्व न दो' (संस्मरण), hindi.theprint.in, 10 दिसंबर 2020
3) वेसलर (डॉ.) हाइंस वर्नर, "मैदान में एक पहाड़ की आवाज अब भी गूंजती है मंगलेश डबराल", गर्भनाल (मासिक ई-पत्रिका), www.garbhanal.com, 1 जनवरी 2021
4) शंभुनाथ, संपादकीय मार्च 2024 : स्त्री, स्त्री-वाद और स्त्री-सशक्तीकरण(लेख), bhartiyabhashaparishad.org, 8 मार्च 2024
5) हिंदी कविता https://hindi-kavita.com/
6) कविता कोश http://kavitakosh.org
7) डबराल मंगलेश, दिल्ली के दंगों के पीछे कौन, 4 मार्च 2020, Universal News Agency (YouTube)
8) डबराल मंगलेश, "कविता मनुष्य को बेहतर संवेदनशील व्यक्ति बनाती है", 28 दिसंबर 2018, Indian Cultural Forum (YouTube)
9) डबराल मंगलेश, हिंदी अब धमकी की भाषा बनती जा रही है (साक्षात्कार), 30 जुलाई 2019, NewsClickin (YouTube)
10) इरफ़ान, Interview with Manglesh Dabral, 10 दिसंबर 2020, Mera Pedia (YouTube)
11) Kalam Raipur with Manglesh Dabral (सक्षात्कार), 13 June 2018, कलम (YouTube)
12) Meet the author: Manglesh Dabral, 24 अक्टूबर 2018, department of English, University of Delhi (YouTube)
13) प्रधान गोपाल, नक्सलबाड़ी आंदोलन और भारतीय साहित्य (लेख), 25 मई 2020, samkalinjanmat.in
14) सिंह पंकज द्वारा मंगलेश डबराल का इंटरव्यू (मूलतः दूरदर्शन में प्रसारित), 16 मई 2021, www.kafaltree.com (YouTube)

15) लाइव हिंदुस्तानी टीम, जानिए बचपन बचाओ आंदोलन के बारे में - लेख (गूगल), अक्टूबर 2014

https://www.livehindustan.com/news//article1-story-455830.html

16) कुमार रवीश, हिमाचल में बारिश से तबाही (यूट्यूब), अगस्त 2023https://youtu.be/cUhVGurS2Uc?si=T_6V5lZDe4oBwjhO

17) अपूर्वानंद, मंगलेश डबराल: मैं चाहता हूं कि स्पर्श बचा रहे... (गूगल), दिसंबर 2020

https://thewirehindi.com/150891/hindi-literature-remembering-manglesh-dabral/

18) उपाध्याय विनय, स्मृति शेष: मंगलेश डबराल... - साक्षात्कार (गूगल), दिसंबर 2020

https://hindi.news18.com/blogs/vinay-upadhyay/music-of-life-is-composed-within-poetry-manglesh-dabral-in-memories-3371773.html

19) भट्ट चिरंतना, वैश्यावृत्ति कराने के लिए बेटियों के जन्म पर जश्न (गूगल), अक्टूबर 2016

https://www.bbc.com/hindi/social-37703696

20) मंटो सआदत हसन, समाज और वैश्या का रिश्ता (गूगल)

https://www.rekhta.org/quotes/samaaj-aur-vaishya-ka-rishta-saadat-hasan-manto-quotes?lang=hi

21) मिश्र रत्नेश, सहवेदना और साहस के कवि थे मंगलेश : अशोक वाजपेयी (लेख), जनवरी 2021

https://www.amarujala.com/kavya/halchal/manglesh-was-a-poet-of-compassion-and-courage-said-ashoka-vajpayee

22) अपूर्वानंद, मंगलेश डबराल : एक कवि जिसका उदेश्य एक सरल वाक्य... (मूल लेख अंग्रेज़ी में), दिसंबर 2020

https://m.thewire.in/article/the-arts/manglesh-dabral-poet-tribute

23) डबराल मंगलेश, नामवर सिंह : हिंदी के 'नामवर' यानी हिंदी के प्रकाश स्तंभ (लेख), फ़रवरी 2019

https://www.bbc.com/hindi/india-47301596

24) निराला, हिंदी कविता

https://hindi-kavita.com/HindiKukurmuttaSuryakantTripathiNirala.php#Kukurmutta5

25) न्यूज डेस्क, अमर उजाला (नई दिल्ली), कवि विष्णु खरे के निधन पर मंगलेश डबराल और गिरधर राठी के संस्मरण, सितंबर 2018

https://www.amarujala.com/india-news/memoirs-of-manglesh-dabral-and-girdhar-rathi-vith-late-vishnu-khare

26) नवभारत टाइम्स, मंगलेश डबराल और राजेश जोशी ने भी लौटाया साहित्य अकादमी पुरस्कार, अक्टूबर 2015

https://navbharattimes.indiatimes.com/india/manglesh-dabral-and-rajesh-joshi-join-protest-return-sahitya-academy-award/articleshow/49317988.cms

27) दी टाइम्स ऑफ इंडिया, अब मंगलेश डबराल, राजेश जोशी ने साहित्य अकादमी पुरस्कार लौटाया, (मूल लेख अंग्रेज़ी में), अक्टूबर 2015

https://timesofindia.indiatimes.com/india/now-mangalesh-dabral-rajesh-joshi-return-sahitya-akademi-award/articleshow/49318094.cms#google_vignette

28) देव अरुण, मंगलेश डबराल: तीन प्रसंग, दो पाठ: हरीश त्रिवेदी, समालोचन, दिसंबर 2021

https://samalochan.com/harish-trivedi/

29) त्रिपाठी रवींद्र, सत्य हिंदी, स्मृतिहीनता के दौर में स्मृति के लिए सजग एक कवि (लेख), दिसंबर 2020

https://m.satyahindi.com/article/obituary/remembering-manglesh-dabral/115277